कपाल
कुण्डला

कपालकुण्डला

[बंकिम बाबू की अद्वितीय रचना]

•

लेखक
स्वर्गीय श्री बंकिम चटर्जी

•

प्रकाशक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बॉ० नं० ७०, ज्ञानवापी
वाराणसी–१

मूल्य
२ रुपया २५ नये पैसे
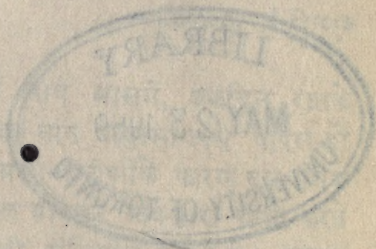
प्रकाशक : ओमप्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बॉक्स नं० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी–१

मुद्रक : सीधव प्रेस
वाराणसी

चित्रकार : आर० मल्लिक

प्रथम खण्ड

●

: १ :

सागर-संगममें

"Floating straight obedient to the stream,"

—Comedy of Errors

लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व माघ मासमें, एकदिन रातके अन्तिम प्रहरमें, यात्रियोंकी एक नाव गङ्गासागरसे वापस हो रही थी। पुर्तगाली और अन्यान्य नौ-दस्युओंके कारण उस समय ऐसी प्रथा थी कि यात्री लोग गोल बाँधकर नाव-द्वारा यात्रा करते थे। किन्तु इस नौकाके आरोही संगियोंसे रहित थे। उसका प्रधान कारण यह था कि पिछली रातको घोर बादलोंके साथ तूफान आया था; नाविक दिक्भ्रम होनेके कारण अपने दलसे दूर विपथमें आ पड़े थे। इस समय कौन कहाँ था, इसका कोई पता न था। नावके यात्रियोंमें बहुतेरे सो रहे थे। एक वृद्ध और एक युवक केवल जाग रहे थे। वृद्ध युवकके साथ बातें कर रहा था। थोड़ी देरतक बातें करनेके बाद वृद्धने मल्लाहोंसे

पूछा—"माझी! आज कितनी दूरतक राह तय कर सकोगे?" माझीने इधर-उधर बहकावा देकर उत्तर दिया—"कह नहीं सकते।"

वृद्ध नाराज होकर नाविकका तिरस्कार करने लगा। इसपर युवकने कहा—"महाशय! जो भगवान्के हाथकी बात है, उसे पण्डित-विद्वान् तो बता ही नहीं सकते, यह बेचारा मूर्ख कैसे बता सकता है, आप नाहक उद्विग्न न हों।"

वृद्धने उत्तेजित होकर जवाब दिया—"उद्विग्न न होऊँ! क्या कहते हो? पाजियोंने बीस-पचीस बीघे का धान काट लिया, बच्चोंको सालभर क्या खिलाऊँगा?"

यह खबर उन्होंने गङ्गासागर पहुँचनेपर पीछेसे आनेवाले यात्रियोंके मुँहसे सुनी थी। युवकने कहा—"मैंने तो पहले ही कहा था कि महाशयके घरपर दूसरा कोई देखभाल करनेवाला नहीं है.....महाशयका आना अच्छा.....उचित नहीं हुआ।"

वृद्धने पहलेकी तरह उत्तेजित स्वरमें कहा—"न आना? अरे, तीनपन तो चले गये! आखिरी अवस्था आ गयी! अब यदि परकाल के लिए कुछ न करूँ, तो कब करूँगा?"

युवकने कहा—"यदि शास्त्रका मर्म समझा जाय, तो तीर्थ-दर्शनसे परकालके लिए जो कर्म साधित होता है, घर बैठकर भी वह हो सकता है।"

वृद्धने कहा—"तो तुम आये क्यों?"

युवकने उत्तर दिया—"मैं तो पहले ही बता चुका हूँ कि समुद्र देखनेकी साध थी। इसीलिये आया हूँ मैं।" इसके बाद ही अपेक्षाकृत मधुर भावुक स्वरमें कहने लगा—"अहा! कैसा दृश्य देखा है, जन्म-जन्मान्तर इस दृश्यको भूल नहीं सकता!"

"दूराध्यश्क्रनिमस्यतन्वी
तमालताली वनराजिनीला।
प्रभाति वेला लवणाम्बु राशे—
धारानिबद्धेव कलङ्करेखा॥"

वृद्धके कान कविताकी तरफ न थे, बल्कि नाविक आपसमें जो कथोपकथन कर रहे थे, वह एकाग्र मनसे उसे ही सुन रहा था।

एक नाविक दूसरे नाविकसे कह रहा था—"ऐ भाई! यह काम तो बड़ा ही खराब हुआ। अब कहाँ किस नदीमें आ पड़े—कहाँ किस देशमें आ पड़े, यह समझमें नहीं आता!"

वक्ताका स्वर भयकातर था। वृद्धने भी समझा कि किसी विपद्की आशंकाका कोई कारण उपस्थित है। उन्होंने डरते हुए पूछा, "माझी! क्या हुआ है?" माझीने कोई जवाब न दिया। किन्तु युवक उत्तरकी प्रतीक्षा न कर बाहर आया। बाहर आकर देखा कि प्रायः सबेरा हो चला है। चारो तरफ घना कुहरा छाय हुआ है; आकाश, नक्षत्र, चन्द्र, किनारा किसी तरफ कुछ दिखाई नहीं पड़ता। समझ गये कि नाविकोंको दिक्भ्रम हो गया है। इस समय वह सब किधर जा रहे हैं, इसका ठौर-ठिकाना नहीं है। कहीं खुले समुद्रमें न पड़ जायें, यही उनकी आशंका है।

हिम निवारणके लिये नाव सामनेसे आवरण द्वारा ढँकी हुई थी; इसीलिये भीतर बैठे हुए आरोहियोंको कुछ मालूम न हुआ। किन्तु युवकने अच्छी तरह हालत समझकर वृद्धको समझा दिया; इसपर नावमें महाकोलाहल उपस्थित हुआ। नावमें कई औरतें भी थीं। कोलाहलका शब्द सुनती हुई जो जागीं, तो लगीं चिल्लाने—"किनारे लगाओ, किनारे लगाओ, किनारे लगाओ!"

नवकुमारने हँसते हुए कहा—"किनारा है कहाँ ? उसके मालूम रहते इतनी विपद् काहे की होती ?"

यह सुनकर नावके यात्रियोंका कोलाहल और भी बढ़ गया। युवक यात्रीने किसी तरह उन लोगोंको समझा-बुझाकर शान्त कर नाविकोंसे कहा—"डरकी कोई बात नहीं है, सबेरा हुआ—चार-पाँच दण्डोंमें अवश्य ही सूर्योदय हो जायगा और चार-पाँच दण्डमें इधर नाव भी डूबी नहीं जाती है। तुम लोग भी अपने डाँड़े बन्द कर दो। धारामें नाव जहाँ जाये, जाने दो। पीछेसे सूर्योदय देखकर विचार किया जायगा।"

नाविकोंने इस परामर्श पर राजी होकर उसके अनुसार कार्य किया।

बहुत देरतक नाविक निश्चेष्ट होकर बैठे रहे। उधर मारे भयके यात्रियोंका प्राण कण्ठागत था। वायु बिलकुल न थी। अतः उन्हें लहरोंके थपेड़ोंका अनुभव उस समय नहीं हो रहा था। फिर भी, सब यही सोच रहे थे कि मृत्यु सुनिश्चित है और निकट है। पुरुष निःशब्द होकर दुर्गानाम जपने लगे और औरतें स्वर मिलाकर रोने लगीं। एक औरत अपनी सन्तानको गङ्गासागरमें विसर्जन करके आ रही थी। लड़केको जलमें डालकर फिर उठा न सकी। केवल वही औरत रोती न थी।

प्रतीक्षा करते-करते प्रायः वेला-अनुभवसे एक प्रहर बीत गया। ऐसे ही समय मल्लाहोंने दरियाके पाँचों पीरों का नाम लेकर एकाएक कोलाहल मचाना शुरू कर दिया। सब लोगोंने पूछा,—"क्या हुआ, क्या हुआ, माझी ! क्या हुआ।" मल्लाह उसी तरह कोलाहल करते हुए कहने लगे,—"सूर्य निकले, सूर्य निकले, लगाओ डाँड़ा, लगाओ डाँड़ा।" नावके सभी यात्री उत्सुकता-

पूर्वक बाहर निकल देखने लगे कि क्या हालत है, हम कहाँ हैं? देखा, कि सूर्यका प्रकाश हो गया है। कुहरे तथा अन्धकारसे सारा दिक्मण्डल एकदम साफ हो गया है। करीब एक प्रहर दिन बीत गया था। जहाँ इस समय नौका है, वह वास्तविक समुद्र नहीं है, नदीका मुहाना मात्र है, किन्तु नदीका वहाँ जैसा विस्तार है, वैसा विस्तार और कहीं भी नहीं है। नदीका एक किनारा तो नावसे बहुत ही समीप है—यहाँ तक कि कोई पचास हाथ दूर होगा, लेकिन नदीका दूसरा किनारा दिखाई नहीं देता; और दूसरी तरफ जिधर भी देखा जाता है, अनन्त जलराशि है। चञ्चल रवि रश्मिमाला प्रदीप्त होकर आकाशप्रान्तमें ही विलीन हो गई है। समीपका जल सचराचर मटमैला नदी-जलकी तरह है, किन्तु दूरका जल नील—नीलप्रभ है। आरोहियोंने निश्चित सिद्धान्त कर लिया है कि वे लोग महासमुद्रमें आ पड़े हैं। फिर भी, सौभाग्य यही है कि किनारा निकट है और डरकी कोई बात नहीं है। सूर्यकी तरफ देखकर दिशाका निरूपण किया। सामने जो किनारा वे देख रहे थे, वह सहज ही समुद्रका पश्चिमी तट निरूपित हुआ। किनारे तथा नावसे थोड़ी ही दूरपर एक नदीका मुँह मंदगामी जलके प्रवाहकी तरह आकर पड़ रहा था। संगम-स्थलके दाहिने बाजू बृहद् वालुका-राशिपर बक आदि पक्षी अगणित संख्यामें क्रीड़ा कर रहे थे। इस नदीने आजकल "रसूलपुर की नदी" नाम धारण कर लिया है।

★

: २ :

किनारेपर

"Ingratitude ! Thou marble-hearted friend !"

—King Lear

आरोहियोंकी स्फूर्तिव्यंजक बातें समाप्त होनेपर नाविकोंने प्रस्ताव किया कि ज्वारमें अभी थोड़ा और विलम्ब है, अतः इस अवसरमें यात्री लोग सामनेकी रेतीपर अपने आहार आदि का आयोजन करें। इसके बाद ही ज्वार आते ही स्वदेशकी तरफ यात्रा करनी होगी। आरोहियोंने यह सलाह मान ली, इसपर मल्लाहोंके नावको किनारे लगानेपर, आरोहीगण किनारे उतरकर स्नानादि प्रातः कृत्य पूरा करने लगे।

स्नानादिके बाद रसोई बनाना एक दूसरी विपत्ति साबित हुई। नावपर खाना बनानेके लिये आग बालनेकी लकड़ी न थी। बाघ आदि हिंस्र जन्तुओंके भयसे ऊपर जाकर लकड़ी काट लानेको कोई तैयार न हुआ। अन्तमें सबका उपवास होनेका उपक्रम होनेका समय देखकर वृद्धने युवकसे कहा—"बेटा, नवकुमार! अगर तुम इसका कोई उपाय न करोगे, तो हम सब भूखों मर जायेंगे।"

नवकुमारने कुछ देरतक चिन्ता करनेके बाद कहा—"अच्छा, जाता हूँ, कुदाल दे दो और दाव लेकर एक आदमी मेरे साथ चले।"

लेकिन कोई भी नवकुमारके साथ जानेको तैयार न हुआ।

"अच्छा, खानेके समय समझूँगा।" यह कहकर नवकुमार अकेले कमर कसकर कुठारहस्त होकर लकड़ी लानेको चल पड़े।

किनारेके करारपर चढ़कर नवकुमारने देखा कि जितनी दूर दृष्टि जाती है, कहीं भी बस्तीका कोई भी लक्षण नहीं है, केवल जंगल ही जंगल है। लेकिन वह जंगल बड़े-बड़े वृक्षोंसे पटा घना जंगल नहीं है, बल्कि स्थान-स्थानपर गोलाकार पौधोंके रूपमें चटियल भूमिखण्ड मात्र है। नवकुमारने उसमें जलाने लायक लकड़ी नहीं पायी। अतः उपयुक्त वृक्षकी खोजमें उन्हें नदी तटसे काफी दूर जाना पड़ा। अन्तमें लकड़ी काटने लायक एक वृक्षसे उन्होंने लकड़ी काटना शुरू किया। लड़की काट चुकनेपर उसे उठाकर ले आना, एक दूसरी समस्या आ खड़ी हुई। नवकुमार कोई दरिद्रकी सन्तान न थे कि उन्हें इसका अभ्यास होता; आनेके समय उन्हें इस समस्याका अनुभव ही न हुआ, अन्यथा जिस किसीको साथ ले ही आते। अब लकड़ीका ढोना उनके लिये एक विषम कार्य हो गया। जो भी हो, काममें प्रवृत्त हो जानेपर सहज ही उससे हताश हो जाना नवकुमार जानते न थे। इस कारण, किसी तरह कष्ट सहते हुए लकड़ी ढोकर नवकुमार लाने ही लगे। कुछ दूर बोझ लेकर चलनेपर थककर वह सुस्ताने लगते थे। फिर ढोते थे, फिर विश्राम करते थे; इसी तरह वे वापस होने लगे।

इस तरह नवकुमारके लौटनेमें काफी विलम्ब होने लगा। इधर उनके साथी उनके आनेमें विलम्ब होते देख उद्विग्न होने लगे। उन्हें यह आशंका होने लगी कि शायद नवकुमारको बाघने खा डाला। संभाव्य काल व्यतीत होनेपर उन लोगोंके हृदयमें यही सिद्धान्त जमने लगा। फिर भी, किसीमें यह साहस न हुआ कि किनारेके ऊपर चढ़कर कुछ दूर जाकर पता लगाये।

नौकारोही यात्री इस तरहकी कल्पना कर ही रहे थे कि भैरव रवसे कल्लोल करता जल बढ़ने लगा। मल्लाह समझ गये कि ज्वार आ गया। मल्लाह यह भी जानते थे कि इस विशेष अवसरपर तटवर्ती नावें इस प्रकार जलके थपेड़ोंसे जमीनपर पटकनी खाकर चूर-चूर हो जाती हैं, इसलिये वह लोग बहुत शीघ्रताके साथ नाव खोलकर नदीकी बीचधारमें चले जानेका उपक्रम करने लगे। नावके खुलते-न-खुलते सामनेकी रेतीली भूमि जलमग्न हो गई। यात्रीगण व्यस्त होकर केवल स्वयं नौका पर सवार ही हो सके। तटपर रखा हुआ आहार बनानेका सारा सामान उठानेका उन्हें मौका ही न मिला।

जलका वेग नावको रसूलपुरकी नदीके बीच खींचे ले जा रहा था, लौटनेमें विलम्ब और बहुत तकलीफ उठानी पड़ेगी, इस ख्यालसे यात्री प्राणपणसे उससे बाहर निकल आनेकी चेष्टा करने लगे। यहाँतक कि उन मल्लाहोंके माथेपर मेहनतके कारण पसीनेकी बूँदें झलकने लगी। इस मेहनतके फलस्वरूप नाव नदी के बाहर तो अवश्य आ गयी, किन्तु ज्वारके प्रबल वेग के कारण एक क्षणके लिये भी रुक न सकी और तीरकी तरह उत्तरकी तरफ आगे बढ़ी, यानी बहुत मिहनत करके भी वे नावको रोक न सके, और नाव फिर वापस न आ सकी।

जब जलका वेग अपेक्षाकृत मन्द हुआ, तो उस समय नाव रसूलपुरके मुहानेसे काफी दूर आगे बढ़ गई थी। अब इस मीमांसाकी आवश्यकता हुई कि नवकुमारके लिए नाव फिर लौटाई जाय या नहीं? हां यहीं यह कह देना भी आवश्यक है कि नवकुमारके सहयात्री उनके पड़ोसीमात्र थे, कोई आत्मीय न था। उन लोगोंने विचारकर देखा कि अब लौटना फिर एक भाटेका काम है। इसके बाद ही फिर रात हो जायगी और रात

को नाव चलाई जा नहीं सकती, अतः फिर दूसरे दिनके ज्वारके लिये रुकना पड़ेगा। तबतक लोगोंको अनाहार भी रहना पड़ता। दो दिनोंके उपवाससे लोगोंके प्राण कण्ठगत हो जायँगे। विशेषतः यात्री किसी तरह भी लौटनेके लिये तैयार नहीं हैं, वे किसीकी आज्ञाके बाध्य भी नहीं। उन सबका कहना है कि नवकुमारकी हत्या बाघ द्वारा हो गयी, यही सम्भव है। फिर इतना क्लेश क्यों उठाया जाय।

इस तरह विवेचनकर नवकुमारको छोड़कर देश लौट चलना ही उचित समझा गया। इस प्रकार उस भीषण जंगलमें समुद्रके किनारे वनवासके लिये नवकुमार छोड़ दिये गये।

यह सुनकर यदि कोई प्रतिज्ञा करे कि किसीके भी उपवास-निवारणके लिये कभी लकड़ी एकत्रित करने न जायेंगे, तो वह पामर है—यात्रीगणकी तरह ही पामर। आत्मोपकारीको वनवास में विसर्जनकर देनेकी जिनकी प्रकृति है, वे तो चिरकालतक इसी प्रकार आत्मोपकारीको विसर्जन करते ही रहेंगे—किन्तु ये लोग कितनी ही बार वनवासी क्यों न बनाते रहें, दूसरेके लिये लकड़ी एकत्रित कर देनेकी जिसकी प्रकृति है, वह तो बारम्बार ही इसी तरह आत्मोपकार करता रहेगा। तुम अधम हो—केवल इसीलिये हम अधम हो नहीं सकते!

*

: ३ :

विजनमें

'Like a veil,
Which, if withdrawn, would but disclose frown,
Of one whose hate is masked but to assail;
Thus to their hopeless eyes the night was shown,
And grimly darkend o'er the face pale."

—Don Juan

जिस जगह नवकुमारको त्यागकर यात्री लोग लौट गये, आजकल उसके समीप ही दौलतपुर और दरियापुर नामके दो छोटे-छोटे गाँव दिखाई पड़ते हैं। किन्तु जिस समयके वर्णनमें हम प्रवृत्त हुए हैं, उस समय वहाँ मनुष्योंकी बस्तीके कोई भी चिन्ह नहीं थे। वहाँ केवल जंगल ही जंगल थे। किन्तु बंगालके सूबेमें हर जगह अधिकांश भूमि जैसी उपजसे भरी रहती है, यहाँ वह बात नहीं है। रसूलपुर के मुहानेसे लेकर स्वर्णरेखातक विस्तृत कई योजनकी राह बालूके बड़े-बड़े दूहोंमें वर्त्तमान है। थोड़ा और ऊँचा होते ही अनायास बालुकामय दूह पहाड़ी कही जा सकती थी। आजकल वहाँके लोग उसे 'बालियाड़ी' कहते हैं। इन बालियाड़ियोंकी उच्च धवल शिखरमालाएँ मध्यान्ह सूर्य-किरणमें अपूर्व शोभा पाती हैं। उनपर ऊँचे पेड़ पैदा नहीं होते। दूह के तल भाग में सामान्य वन जैसा दृश्य दिखाई पड़ता है, किन्तु मध्य भाग या शिखरपर प्रायः धवल शोभा ही व्याप्त रहती है।

निम्न भागमें भी कंटीली झाड़ी, झाऊ और वन-पुष्पके ही छोटे-छोटे पेड़ दिखाई पड़ते हैं।

ऐसे ही नीरस जंगलमें साथियों द्वारा नवकुमार अकेले परित्यक्त हुए। पहले लकड़ीका बोझ लेकर जब वे नदी किनारे आये तो उन्हें नाव दिखायी न दी। अवश्य ही उस समय उनके मनमें डर पैदा हुआ किन्तु सहसा उन्होंने विश्वास न किया कि उनके साथी उन्हें इस प्रकार छोड़कर चले गये होंगे। उन्होंने विचार किया कि ज्वारका जल बढ़ जानेके कारण उन लोगोंने अपनी नाव कहीं किनारे दूसरी जगह लगा रखी होगी। शीघ्र ही वे लोग खोज लेंगें और नावपर चढ़ा लेंगे। आशासे वह बहुत देरतक किनारे खड़े रहे। लेकिन नाव न आई। नावका कोई आरोही भी दिखाई न दिया। नवकुमार भूखसे व्याकुल होने लगे। प्रतीक्षा न कर अब नवकुमार नदीके किनारे-किनारे नावकी खोज करने लगे, लेकिन कहीं भी नावका कोई निशान भी दिखाई न दिया, अतः लौटकर फिर अपनी पहली जगह पर आ गये। फिर भी, नावको वहाँ पहुँची न देखकर उन्होंने विचार किया कि ज्वारके वेगसे मालूम होता है नाव आगे निकल गयी है, अतः अब प्रतिकूल धारापर नाव पलटानेमें जान पड़ता है, साथियों को विलम्ब लग रहा है। लेकिन धीरे-धीरे ज्वारका वेग भी शान्त हो गया। अतः उन्हें आशा हुई कि साथी लोग भाटेमें अवश्य लौटेंगे, किन्तु धीरे-धीरे भाटेका वेग दोबारा बढ़ा, फिर घटने लगा और उसके साथ ही सूर्यास्त हो गया। यदि भाटेमें नावको वापस होना होता, तो अबतक वह कभीकी आ गई होती?

अब नवकुमारको विश्वास हो गया कि या तो ज्वार-वेगमें नाव उलटकर डूब गयी है, अथवा साथियोंने ही मुझे छोड़ दिया है।

पर्वतके नीचेसे चलनेवाले व्यक्तिके ऊपर जैसे शिखर आ पड़े और वह पिस जाय, वैसे ही इस सिद्धान्तके हृदयमें पैदा होते ही नवकुमारका हृदय पिस गया।

इस समय नवकुमारके हृदयकी जो अवस्था थी, उसका वर्णन करना बहुत कठिन है। साथी लोग भी प्राणसे हाथ धो बैठे होंगे, इस सन्देहने भी उन्हें चिन्तान्वित किया, किन्तु शीघ्र ही अपनी विषम अवस्थामें उसकी समालोचनाने—उस शोकको भुला दिया। विशेषतः जब उनके मनमें हुआ कि जान पड़ता है कि उनके साथियोंने उन्हें छोड़ दिया है, तो हृदयके क्रोधसे और भी शीघ्र उनके हृदयकी चिन्ता दूर हो गयी।

नवकुमारने देखा कि आस-पास न तो कोई गाँव है, न आश्रय है, न लोग—और न बस्ती है, न भोजनकी कोई वस्तु, न पीने को पानी ही क्योंकि नदीका पानी सागरजलकी तरह खारा है; साथ ही भूख-प्याससे हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। भीषण समय है और उसके निवारणका भी कोई उपाय नहीं है। कपड़े भी नहीं हैं। क्या इसी बर्फीली हवामें खुले आकाशके नीचे बिना किसी छायाके रहना पड़ेगा? हो सकता है, रातमें शेर-भालू फाड़ खायें! आज बचे ही रह गये तो कल यही हो सकता है। प्राण-नाश ही निश्चित है।

मनकी भयानक चञ्चलताके कारण नवकुमार बहुत देरतक एक जगहपर रुक नहीं सके। वह नदी तटसे ऊपर चढ़कर आये और इधर-उधर भटकने लगे। क्रमशः अन्धकार बढ़ने लगा। सिरपर आकाशमें नक्षत्र ठीक उसी तरह लगने लगे, जैसे नवकुमारके अपने गाँवमें उगा करते थे। उस अन्धकारमें चारों तरफ सन्नाटा, भयानक, गहरा सन्नाटा? आकाश, वन, नदी, समुद्र सब तरफ भयावह सन्नाटा—केवल बीच-बीचमें समुद्र-

गर्जन और अन्य पशु-पक्षियोंका भीषण रव सुनाई पड़ जाता था। फिर भी उसी भीषण अन्धकार और सन्नाटेमें नवकुमार इधर-उधर घूम रहे थे। कभी नदीके चारों तरफ घूमते, कभी उपत्यकामें, कभी अधित्यकामें और कभी स्तूपके शिखरपर चले जाते थे। मनकी चंचलता उन्हें एक जगह स्थिर नहीं रहने देती थी। इस तरह घूमते हुए हर पदपर हिंस्र पशुका भय था, लेकिन वही डर तो एक जगह खड़े रहनेपर भी था।

इस तरह घूमते-घूमते नवकुमार थक गये। दिन भरके थके थे; अतः और भी शीघ्र अवसन्नता आयी। अन्तमें एक जगह बालियाड़ीके सहारे पीठपर ढासन लेकर बैठ गए। घरकी सुख-शय्या याद आ गयी।

जब शारीरिक और मानसिक चिन्ताएँ एक साथ आ जाती हैं और अस्थिर कर देती हैं, तो उस समय कभी-कभी नींद भी आ जाती है। नवकुमार चिन्तामग्न अवस्थामें निद्रित होने लगे। मालूम होता है, यदि प्रकृतिने ऐसा नियम न बनाया होता, तो मारे चिन्ताके आदमीकी मौत हो जाती।

★

: ४ :

स्तूप-शिखर

"....सविस्मये देखिया अदूरे भीषण-दर्शन मूर्ति।'

—मेघनाद वध।

जब नवकुमारकी नींद खुली, तो उस समय भयानक रात थी। उन्हें आश्चर्य हुआ कि अभीतक उन्हें शेर-बाघने क्यों नहीं फाड़ खाया! वह इधर-उधर देखने लगे कि कहीं बाघ तो नहीं आता है। अकस्मात् बहुत दूर सामने उन्हें एक रोशनी-सी जलती दिखाई दी। कहीं भ्रम तो नहीं होता, यह सोचके नवकुमार अतीव मनोनिवेशपूर्वक उस तरफ देखने लगे। रोशनीकी परिधि क्रमशः बढ़के और उज्ज्वलतर होने लगी। मालूम हुआ कि कहीं आग जल रही है। इसे देखते ही नवकुमारके हृदयमें आशाका सञ्चार हो आया। कारण, मनुष्यके बिना यह अग्नि-ज्वलन सम्भव नहीं। नवकुमार उठकर खड़े हो गये। जिधरसे अग्निकी रोशनी आ रही थी, वह उसी तरफ बढ़े। एकबार मनमें सोचा—यह रोशनी कहीं भौतिक तो नहीं है....हो भी सकता है। किन्तु केवल डरकर बैठ रहनेसे ही कौन जीवन बचा सकता है? यह विचार करते हुए नवकुमार निर्भीक चित्त हो उस तरफ बढ़े। वृक्ष लता, बालुका स्तूप, पग-पगपर उनकी गतिको रोकने लगे। नवकुमार वृक्ष, लताओंको दलते हुए और स्तूपोंका लंघन करते हुए उस तरफ बढ़ने लगे। आलोकके समीप पहुँचकर नवकुमारने देखा कि एक अति उच्च शिखरपर अग्नि जल रही है। उस

अग्निके प्रकाशमें शिखरपर बैठी हुई मनुष्यमूर्ति आकाशपर चित्रकी तरह दिखाई पड़ रही थी। नवकुमारने संकल्प किया कि इस मनुष्यमूर्तिके निकट पहुँचकर देखना चाहिये और इसी उद्देश्यसे वह उधर बढ़े। अन्तमें वह उस स्तूपपर चढ़ने लगे। मनमें एक अज्ञात आशंका अवश्य हुई; फिर भी, उसकी परवाह न कर नवकुमार आगे बढ़ने लगे। उस आसीन व्यक्तिके सामने पहुँचकर उन्होंने जो जो दृश्य देखा, उससे उनके शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। वह यह निश्चय न कर सके कि बैठना चाहिये या भागना चाहिये।

शिखरासीन मनुष्य आँखें मूँदे हुए ध्यानमग्न बैठा था। पहले वह नवकुमारको देख न सका। नवकुमारने देखा कि उसकी उम्र कोई पचीस वर्षके लगभग होगी। यह न जान पड़ा कि उसकी देहपर कोई वस्त्र है या नहीं; फिर कमरसे नीचेतक बाघम्बर पहने हुए थे। गलेमें रुद्राक्षकी माला लटक रही थी। सारा चेहरा दाढ़ी, मूँछ और कपालकी जटासे प्रायः ढँकासा था। सामने लकड़ीसे आग जल रही थी; उसीअग्निकी रोशनीको देखकर नवकुमार वहाँतक पहुँचे थे। लेकिन नवकुमारको एक तरहकी भयानक बदबू आ रही थी। उस स्थानको मजेमें देखते हुए नवकुमार इसका कारण ढूँढ़ने लगे। नवकुमारने उस व्यक्तिके आसनकी तरफ देखा कि एक छिन्नमुण्ड गलित शवपर वह मनुष्य बैठा हुआ ध्यानमग्न है। और भी भयभीत दृष्टिसे इन्होंने देखा कि पासमें ही नरमुण्ड भी रखा हुआ है। खूनकी कालिमा अभी भी उसपर लगी हुई है। इसके अतिरिक्त उस स्थानके चारों तरफ हड्डियाँ बिखरी पड़ी हैं। यहाँतक कि उस रुद्राक्ष-मालामें भी बीच-बीचमें हड्डियाँ पिरोई हुई हैं। यह सब देखकर नवकुमार मंत्रमुग्धकी तरह खड़े देखते रह गये। वह आगे बढ़ें

या पीछे पलटकर भागें; कुछ भी समझ न सके। उन्होंने कापालिकों की बात सुनी थी। समझ गये कि यह व्यक्ति भयानक कापालिक ही है।

जिस समय नवकुमार यहाँ पहुँचे, उस समय यह कापालिक जप या ध्यानमें मग्न था। नवकुमारको देखकर उसने भ्रूक्षेप भी नहीं किया। बहुत देरके बाद उसने पूछा—"कस्त्वम्?"

नवकुमारने उत्तर दिया—"ब्राह्मण।"

कापालिकने फिर कहा,—"तिष्ठ।"

यह कहकर वह उसी प्रकार अपनी क्रिया में संलग्न रहा। नवकुमार भी बैठे नहीं, बल्कि खड़े ही रहे।

इस तरह कोई आधा प्रहर बीत गया। जपके अन्तमें कापालिकने आसनसे खड़े होकर उसी तरह संस्कृत भाषामें कहा—"मेरे पीछे-पीछे चले आओ।"

यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि और कोई समय होता तो नवकुमार कभी इसके साथ न जाते। किन्तु इस समय उनके प्राण भूख और प्याससे कण्ठमें आ लगे थे, अतः उन्होंने कहा—"प्रभुकी जैसी आज्ञा। लेकिन मैं भूख और प्याससे बहुत कातर हूँ, बताइये वहाँ जानेसे मुझे आहारार्थ वस्तु मिलेगी?"

कापालिकने कहा—"तुम भैरवी प्रेरित हो, मेरे साथ आओ; खानेको भोजन पाओगे।"

नवकुमार कापालिकके अनुगामी हुये। दोनों बहुत दूरतक साथ गये। राहमें बनमें कोई बात न हुई। अन्तमें एक पर्णकुटीर मिली। कापालिकने उसमें प्रवेशकर पीछे नवकुमारको आनेका आदेश दिया। इसके उपरान्त कापालिकने नवकुमारसे अबोध-गम्य तरकीबसे एक लकड़ी जलाई। नवकुमारने उस रोशनीमें

देखा कि झोपड़ीमें चारों तरफ चटाई बिछी हुई है और जगह-जगह व्याघ्रचर्म बिछे हैं। एक कलशमें पानी और कुछ फल-फूल भी रखे हुए हैं।

कापालिकने आग बालकर कहा—"फल-मूल जो कुछ है, खा सकते हो। पत्तोंका दोना बनाकर पात्रसे जल पी सकते हो। व्याघ्रचर्म बिछा हुआ है, सो सकते हो। निडर होकर रहो यहाँ शेर आदिका डर नहीं। फिर दूसरे समय मुझसे मुलाकात होगी। जबतक मुलाकात न हो, यह झोपड़ी त्यागकर कहीं न जाना।"

यह कहकर कापालिक चला गया। नवकुमारने थोड़े फल खाये और कुछ कसैले स्वादके उस जलको पिया। इतना आहार मिलते ही नवकुमारको परम सन्तोष हुआ। इसके बाद ही वह उस चर्मपर लेट रहे। सारे दिनकी मेहनत और जागरणके कारण वह शीघ्र ही निद्राकी गोदमें सो गये।

: ५ :

समुद्रतट पर

"...दोषप्रभावे न च लक्ष्यत त
विमर्षि चाकारमनि चेतानां
मृणालिनी हैमविनोद रागम्॥"—रघुवंश।

सबेरे उठते ही नवकुमार सहज ही उस कुटीसे बाहर निकलकर घरकी राह खोजनेके लिए व्यस्त होने लगे, विशेषतः इस कापालिकका साथ किसी प्रकार भी उन्हें उचित न जान पड़ा। फिर

भी, इस पथहीन जङ्गलसे निकल ही कैसे सकते हैं ? कापालिक अवश्य ही राह जानता है। क्या पूछनेसे बता न देगा ? विशेषतः अभी जहाँ तक देखा गया है, कापालिकने उनके प्रति कोई शंका-सूचक आचरण नहीं किया है। फिर, वह इतना क्यों डरते हैं ! इधर कापालिकने मना किया है, कि जबतक फिर हमसे मुलाकात न हो, इस कुटीसे कहीं न जाना। हो सकता है उसकी आज्ञा न माननेसे उसके क्रोधका भाजन बनना पड़े। नवकुमार ने सुन रखा है कि कापालिक असाध्य कार्य कर सकते हैं। अतः ऐसे पुरुषकी अवज्ञा करना अनुचित है। इस तरह सोच-विचार कर अन्तमें कापालिककी कुटीमें ही रहनेका निश्चय किया।

लेकिन धीरे-धीरे तीसरा प्रहर आ गया। फिर भी, कापालिक न लौटा। एक दिन पहलेका उपवास और इस समय तकका अनशन नवकुमारकी भूख फिर प्रबल हो उठी। कुटीमें जो कुछ फलमूल था, वह पहले ही समाप्त हो चुका था। अब बिना आहारार्थ फलमूल खोजे काम नहीं चल सकता। बिना फलकी खोज किये काम नहीं चलता, कारण भूख भयानक रूपसे उभड़ चली थी। शामके होनेमें जब थोड़ा समय रह गया, तो अन्त-में फलकी खोजमें नवकुमारको बाहर निकलना ही पड़ा।

नवकुमारने फलकी खोजमें समीपके सारे स्तूपोंका परि-भ्रमण किया। जो एक-दो वृक्ष इस बालू पर उगे थे, उनसे एक तरहके बादामके जैसा फल मिला। खानेमें वह फल बहुत ही मीठा था, अतः नवकुमार ने भरपेट उसे ही खाया।

उस भागमें रक्षित बालुका स्तूप थोड़ी ही तादादमें थे, अतः थोड़ी देरके परिश्रमसे ही नवकुमार उसे पार कर गये। इसके बाद ही वह बालुकाहीन निविड़ जंगलमें जा पड़े। जिन लोगोंने

इस तरहके जंगलका परिभ्रमण किया है, वे जानते हैं कि ऐसे जंगलमें थोड़ा घुसते ही लोग राह भूल जाते हैं। वही हाल नव-कुमारका भी हुआ। थोड़ी दूर जाते ही उन्हें इस बातका ध्यान न रहा कि उस कुटीको वह किस दिशामें छोड़ गये हैं। गम्भीर समुद्रका गर्जन उन्हें सुनाई पड़ा। वह समझ गये कि निकट ही समुद्र है। इसके बाद ही वे उस जंगलसे बाहर हुए और सामने ही विशाल समुद्र दिखाई दिया। अनन्त विस्तृत नीलाम्बुमण्डल सामने देखकर नवकुमारको अपार आनन्द प्राप्त हुआ। सिकता-मय तटपर जाकर वह बैठ गये। सामने फेनिल, नील अनन्त समुद्र था। दोनों पार्श्वमें जितनी दूर दृष्टि जाती है, उतनी ही दूर तक तरंग, भङ्ग, प्रक्षिप्त फेनकी रेखा, स्तूपीकृत विमल कुसुम-दामग्रथित मालाकी तरह वह धवल फेन-रेखा हेमकान्त सैकतपर न्यस्त हो रही है। काननकुण्डला धरणीके उपयुक्त अलकाभरण नील जलमण्डलके बीच सहस्रों स्थानोंमें भी फेन रहित तरङ्ग भङ्ग हो रहा था। यदि कभी इतना प्रचण्ड वायुवहन संभव हो कि उसके वेगसे नक्षत्रमाला हजारों स्थानों से स्थानच्युत होकर नीलाम्बरमें आन्दोलित होता रहे, तभी उस सागर तरङ्गकी विक्षिप्तताका स्वरूप दिखाई पड़ सकता है। इस समय अस्तगामी सूर्यकी मृदुल किरणोंमें नीले जलका एकांश द्रवीभूत सुवर्णकी तरह झलमला रहा था। बहुत दूरपर किसी यूरोपीय व्यापारी का जहाज सफेद डैने फैलाकर किसी वृहत् पक्षीकी तरह सागर-वक्षपर दौड़ा जा रहा था।

नवकुमारको उस समय इतना ज्ञान न था कि वह समुद्रके किनारे बैठकर कितनी देर तक सागर-सौन्दर्य निरखते रह गये। इसके बाद ही एकाएक प्रदोष कालका हलका अंधेरा सागरवक्ष

पर आ पहुँचा। अब नवकुमारको चैतन्य हुआ कि आश्रयका स्थान खोज लेना होगा। यह ख्याल आते ही नवकुमार एक ठण्डी साँस लेकर उठ खड़े हुए। ठण्डी साँस उन्होंने क्यों ली, कहा नहीं जा सकता। उठकर वह समुद्रकी तरफसे पलटे। ज्यों ही वह पलटे, वैसे ही उन्हें सामने एक अपूर्व मूर्ति दिखाई दी। उस गम्भीर नादकारी वारिधिके तटपर, विस्तृत बालुका भूमिपर संध्याकी अस्पष्ट आभामें एक अपूर्व रमणीमूर्ति है। केशभार— अवेणी सम्बद्ध, संसर्पित, राशिकृत, आगुल्फलम्बित केशभार! उसके ऊपर देहरत्न, मानों चित्रपटके ऊपर चित्र सजा हो। अलकावलीकी प्रचुरताके कारण चेहरा पूरी तरहसे प्रकाश पा नहीं रहा था, फिर भी मेघाडम्बरके अन्दरसे निकलने और झाँकनेवाले चन्द्रमाकी तरह वही चेहरा स्निग्ध उज्ज्वल प्रभा दिखा रहा था। विशाल लोचन, कटाक्ष अतीव स्थिर, अतीव स्निग्ध, गम्भीर और ज्योतिर्मय थे और वह कटाक्ष भी इस सागर जलपर स्निग्ध व चन्द्रबिम्बकी तरह खेल रहा था। रुक्ष केशराशि ने कन्धों और बाहुओंको एकदम छा लिया था। कन्धा तो बिल्कुल दिखाई ही नहीं पड़ता था। बाहुयुगलकी विमलश्री कुछ-कुछ झलक रही थी। वर्ण अर्द्धचन्द्रनिःसृत कौमुदी वर्ण था; घने काले भौंरे जैसे बाल थे। इन दोनों वर्णोंके परस्पर शान्ति ध्येयसे वह अपूर्व छटा दिखाई पड़ रही थी, जो उस सागरतटपर अर्द्धोज्ज्वल प्रभामें ही दिखाई पड़ सकती है, दूसरी जगह नहीं। रमणी देह, उसपर निरावरण थी। ऐसी ही वह मोहनी मूर्ति थी।

अकस्मात् ऐसे दुर्गम जङ्गल में ऐसी देवमूर्ति देखकर नवकुमार निस्पन्द और अवाक् हो रहे। उनके मुँहसे वाणी न निकली—केवल एकटक देखते रह गये। वह रमणी भी स्पन्दनहीन, अनिमेषलोचनसे एकटक नवकमारको देखती रह गयी।

दोनोंकी दृष्टिमें प्रभेद यह था कि नवकुमारकी दृष्टिमें आश्चर्य की भङ्गिमा थी और रमणीकी दृष्टिमें ऐसा कोई लक्षण न था, वरन उसकी दृष्टि स्थिर थी। फिर भी उस दृष्टिमें उद्वेग था।

इस तरह उस अनन्त समुद्रके तटपर यह दोनों प्राणी बहुत देर तक ऐसी ही अवस्थामें खड़े रहे। बहुत देर बाद रमणी कण्ठसे आवाज सुनाई पड़ी। बड़ी ही मीठी वाणी और सुरीले स्वरसे उसने पूछा—"पथिक ? तुम राह भूल गये हो ?"

इस कण्ठ-स्वरके साथ-साथ नवकुमारकी हृत्तन्त्री बज उठी। विचित्र हृदयका तन्त्रीयन्त्र समय-समयपर इस प्रकार लयहीन हो जाता है कि चाहें कितना भी यत्न किया जाये वापस मिलता नहीं—एक स्वर भी नहीं होता। किन्तु एक ही शब्दमें, रमणी-कण्ठ सम्भूत स्वरसे वह संशोधित हो जाता है; सब तार लय-विशिष्ट—समस्वर हो जाते हैं। मनुष्यजीवनमें उस क्षणमें ही सुखमय संगीत प्रवाहमय जान पड़ने लगता है। नवकुमारके कानोंमें भी ऐसे ही सुख-संगीतका प्रवाह बह गया।

"पथिक ? तुम राह भूल गये हो ?" यह ध्वनि नवकुमारके कानोंमें पहुँची। इसका क्या अर्थ है ? क्या उत्तर देना होगा ? नवकुमार कुछ भी समझ न सके। वह ध्वनि मानों हर्षविकम्पित होकर नाचने लगी। मानों पवनमें वह ध्वनि लहरियाँ लेने लगी। वृक्षोंके पत्तों तकमें वह ध्वनि व्याप्त हो गयी। इसके सम्मुख मानों सागरनाद मन्द पड़ गया। सागर उन्मत्त; वसन्त काल; पृथ्वी सुन्दरी, रमणी सुन्दरी, ध्वनि भी सुन्दर, हृद्तन्त्रीमें सौन्दर्यकी लय उठने लगी।

रमणीने कोई उत्तर न पाकर कहा—'मेरे साथ आओ।' यह कहकर वह तरुणी चली। उसका पदक्षेप लक्ष्य न होता था।

वसन्तकालकी मन्द वायुसे चालित शुभ्र मेघकी तरह वह धीरे-धीरे अलक्ष्य पादविक्षेपसे चली। नवकुमार मशीनकी पुतली की तरह साथ चले। राहमें एक छोटा-सा बन घूमकर जाना पड़ा। वनकी आड़में जानेपर फिर सुन्दरी दिखाई न दी। वनका चक्कर लगा लेनेपर नवकुमारने देखा कि सामने ही वह कुटी है।

: ६ :

कापालिकके साथ

"कथं निगडसंयतासि द्रुतम् नयामि भवतीमितः"

—रत्नावली।

नवकुमार कुटीमें प्रवेश कर दरवाजा बन्द करते हुए अपनी हथेलीपर सर झुकाकर बैठ रहे। बहुत देर बैठे रहे; शीघ्र माथा न उठाया।

"यह कौन थी, देवी या मानुषी या कापालिककी मायामात्र ?" नवकुमार निस्पन्द अवस्थामें हृदयमें ऐसे ही विचार करते बैठे रहे। वह कुछ भी समझ न सके।

वह अन्यमनस्क थे, इसलिये एक विशेष बात लक्ष्य कर न सके। उस कुटीमें उनके आनेसे पूर्व ही एक लकड़ी जल रही थी। इसके बाद काफी रात बीतनेपर उन्हें ख्याल हुआ कि अभीतक

सायं-संध्या आदिसे वह निवृत्त नहीं हुए, और फिर जलकी असुविधाका ध्यानकर उस ख्यालसे निरस्त हुए, तो उन्हें दिखाई दिया कि कुटीमें केवल लकड़ी ही नहीं जल रही है, वरन् चावल आदि पाक द्रव्य भी एक जगह रखा हुआ है। इस सामानको देखकर नवकुमार चकित न हुए—मनमें सोचा अवश्य ही यह कापालिक द्वारा रखा गया है, इसमें आश्चर्यकी ही कौन-सी बात है?

"शस्यं च गृहमागतम्" बुरी बात तो है नहीं। "भोज्यं च उदरागतम्" कहनेसे और भी स्पष्ट समझमें आ सकता। नवकुमार भी इस चीजका माहात्म्य न जानते हों, ऐसी बात नहीं। संक्षेपमें सायंकृत्य समाप्त करनेके बाद चावलको कुटीमें रखी हुई एक हँडीमें पकाकर नवकुमारने डटकर भोजन कर लिया।

दूसरे दिन सबेरे चर्मशय्या परित्यागकर नवकुमार समुद्रतटकी तरफ चल पड़े। एक दिन पहले अनुभव हो जानेके कारण आज राह पहचान लेनेमें विशेष कष्ट नहीं हुआ। प्रातःकृत्य समाप्त कर प्रतीक्षा करने लगे। किसकी प्रतीक्षा कर रहे थे? पहले दिनवाली मायाविनी आज फिर आयेगी—यह आशा नवकुमारके हृदयमें कितनी प्रबल थी, यह तो नहीं कहा जा सकता—लेकिन इस आशाका त्याग वह न कर सके और उस जगहको भी छोड़ न सके। लेकिन काफी दिन चढ़ने पर भी वहाँ कोई न आया। अब नवकुमार उस स्थानपर चारों तरफ घूमकर टहलने लगे। उनका अन्वेषण व्यर्थ था। मनुष्य समागमका चिन्हमात्र भी वहाँ न था। इसके बाद फिर लौटकर उस स्थान पर आ बैठे। सूर्य क्रमशः अस्त हो गये, अन्धकार बढ़ने लगा; अन्तमें हताश होकर नवकुमार कुटीमें वापस आये। कुटीमें वापस आकर नव-

कुमारने देखा कि कापालिक कुटीमें निःशब्द बैठा हुआ है। नवकुमारने पहले स्वागत जिज्ञासा की, लेकिन कापालिकने इसका कोई उत्तर न दिया।

नवकुमारने पूछा--'अबतक प्रभुके दर्शनसे मैं क्यों वञ्चित रहा ?" कापालिकने उत्तर दिया—"अपने व्रतमें नियुक्त था।"

नवकुमारने घर लौटनेकी इच्छा प्रगट की। उन्होंने कहा—"न तो मैं राह ही पहचानता हूँ और न मेरे पास राह खर्च ही है। प्रभुके दर्शनसे यद्विहित-विधान हो सकेगा, इसी आशामें हूँ।"

कापालिकने इतना ही कहा—"मेरे साथ आओ।" यह कहकर वह उदास हृदयसे उठ खड़ा हुआ। घर लौटनेसे सुभीता हो सकेगा, आशासे नवकुमार भी साथ हो लिए।

उस समयतक भी संध्याका पूरा अन्धकार फैला न था, हलकी रोशनी थी एकाएक नवकुमारकी पीठपर किसी कोमल हाथका स्पर्श हुआ। उन्होंने पलटकर जो देखा, उससे वह अवाक् हो रहे। वही अगुल्फलम्बित निबिड़ केशराशिधारिणी वन्यदेवीकी मूर्ति सामने थी। एकाएक कहाँसे यह मूर्ति उनके पीछे आ गयी ? नवकुमारने देखा कि रमणी मुँहपर उँगली रखकर इशारा कर रही है। वह समझ गये कि रमणी बात करनेको मना कर रही है। निषेधका अधिक प्रयोजन भी न था। नवकुमार क्या कहते ? वह आश्चर्यसे खड़े रह गये। कापालिक यह सब कुछ देख नह सका था। वह क्रमशः आगे बढ़ता ही गया। उसके श्रवणारीं परिधिके बाहर चले जानेपर रमणीने धीमे स्वरमें कुछ कहा। नवकुमारके कानोंमें उन शब्दोंने प्रवेश किया। यह शब्द थे—"कहाँ ! जाते हो ? न जाओ। लौटो—भागो।"

यह बात कहनेके साथ-साथ रमणी धीरेसे खिसक गयी। प्रत्युत्तर सुननेके लिये वह खड़ी न रही। नवकुमार पहले तो कुछ विमूढ़से खड़े रहे, इसके बाद व्यग्र इसलिए हुए कि वह रमणी किधर खिसक गयी। मनमें सोचने लगे—"यह कैसी माया है? या मेरा भ्रम है? जो बात सुनाई दी, वह आशंकासूचक है, लेकिन वह आशंका किस बातकी है? तान्त्रिक सब कुछ कर सकता है। तो क्या भागना चाहिये! लेकिन भागनेकी जगह कहाँ है?"

नवकुमार ऐसी ही चिन्ता कर थे, ऐसे समय उन्होंने देखा कि कापालिक उन्हें अपने पीछे न पाकर लौट रहा है। कापालिक ने कहा—"विलम्ब क्यों करते हो?"

जब मनुष्य अपना कर्त्तव्य कुछ स्थिर नहीं किये रहता, तो वह जिस कार्यके लिए पहले आहूत होता है, उसे ही करता है। कापालिक द्वारा पुनः बुलाये जानेपर बिना कोई प्रतिवाद किये ही नवकुमार उसके पीछे चल पड़े।

कुछ दूर जानेके बाद सामने एक मिट्टीकी दीवारकी कुटी दिखाई दी। उसे कुटी भी कहा जा सकता है और छोटा घर भी कहा जा सकता है, किन्तु इससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं। इसके पीछे ही सिकतामय समुद्रतट है। घरके बगलसे वह कापालिक नवकुमारको लेकर चला। ऐसे ही समय तीरकी तरह वही रमणी फिर एक बाजूसे दूसरे बाजू निकल गयी। जाते समय फिर कहा—"अब भी भागो। क्या तुम नहीं जानते कि बिना नरमांसके तान्त्रिककी पूजा नहीं होती!"

नवकुमारके माथेपर पसीना आ गया। दुर्भाग्यवश रमणी

की यह बात कापालिकके कानोंमें पहुँच गयी, उसने कहा—
"कपालकुण्डले !"

यह स्वर नवकुमारके कानोंमें मेघ गर्जनकी तरह गूँजने लगा, लेकिन कपालकुण्डलाने इसका कोई उत्तर न दिया।

अब कापालिक नवकुमारका हाथ पकड़कर ले जाने लगा। मनुष्यघाती हाथोंका स्पर्श होते ही नवकुमारकी देहकी धमनियोंका रक्त दूने वेगसे प्रवाहित होने लगा। लुप्त साहस एक बार नवकुमारमें फिर आ गया। नवकुमार ने कहा—"हाथ छोड़िये।"

कापालिकने कोई उत्तर न दिया। नवकुमारने फिर पूछा—"मुझे कहाँ ले जाते हैं?"

कापालिकने कहा—"पूजाके स्थानमें।"

नवकुमारने कहा—"क्यों?"

कापालिकने कहा—"वधके लिए।"

यह सुनते ही बड़ी तेजीके साथ नवकुमारने अपना हाथ खींचा। जिस बलसे उन्होंने अपना हाथ खींचा था, उससे यदि कोई सामान्य जन होता, तो हाथ बचा लेना तो दूर रहा, वह गिर पड़ता, लेकिन कापालिकका शरीर भी न हिला; नवकुमारकी कलाई कापालिकके हाथमें ही रह गयी। नवकुमारके हाथकी हड्डी मानो टूटने लगी। मुमुर्षु की तरह नवकुमार कापालिकके साथ जाने लगे।

रेतीले मैदानके बीचोबीच पहुँचनेपर नवकुमारने देखा कि वहाँ भी लकड़ीका कुन्दा जल रहा था। उसके चारों तरफ तांत्रिक पूजाका सामान फैला हुआ है। उसमें नर-कपालपूर्ण आसव भी

है लेकिन शव नहीं है ! नवकुमारने अनुमान किया कि उन्हें ही शव बनना पड़ेगा।

कितनी ही लताकी सूखी हुई कठिन डालियाँ वहाँ लाकर पहलेसे रखी हुई थीं। कापालिकने उसके द्वारा नवकुमारको दृढ़तापूर्वक बाँधना शुरू किया। नवकुमारने शक्तिभर बलप्रकाश किया; लेकिन बल लगाना व्यर्थ हुआ। उन्हें विश्वास हो गया कि इस उम्रमें भी कापालिक मस्त हाथी जैसा बल रखता है। नवकुमारको जोर लगाते देखकर कापालिकने कहा—मूर्ख ! किस लिए जोर लगाता है ? तेरा जन्म आज सार्थक हुआ। भैरवी पूजा में तेरा मांसपिण्ड अर्पित होगा। इससे ज्यादा तेरा और क्या सौभाग्य हो सकता है ?"

कापालिकने नवकुमारको खूब कसकर बाँधकर छोड़ रखा। इसके बाद वह वधके पहलेकी प्राथमिक पूजामें लग गया। तबतक नवकुमार बराबर अपने बन्धनको तोड़नेकी कोशिश करते रहे। लेकिन वह सूखी लताएँ गजबकी मजबूत थीं—बन्धन बहुत दृढ़ था। मृत्यु अवश्य होगी ! नवकुमारने अन्तमें इष्टदेव के चरणोंमें ध्यान लगाया। एक बार जन्मभूमिकी याद आयी, अपना सुखमय आवास याद आया, एक बार बहुत दिनोंसे अन्तर्हित माता-पिताका स्नेहमय चेहरा याद आया और दो-एक बूंद आँसू ढुलककर रेतीपर गिर पड़े। कापालिक प्राथमिक पूजा समाप्त कर खड्ग लेनेके लिए अपने आसनसे उठ खड़ा हुआ, लेकिन जहाँ उसने खड्ग रखा था, वहाँ वह न मिला, आश्चर्य ! कापालिक कुछ विस्मित हुआ। कारण, उसे पूरी तरह याद था, कि शामको उसने खड्गको यथास्थान रख दिया था। फिर स्थानांतरित भी नहीं किया, तब कहाँ गया ? कापालिकने इधर-

उधर खोजा, लेकिन वह कहीं न मिला। तब उसने पूर्व कुटीकी तरफ पलटकर जोरसे कपालकुण्डलाको पुकारा, लेकिन बारम्बार बुलाये जानेपर भी कपालकुण्डलाने कोई उत्तर न दिया। कापालिककी आँखें लाल और भौंहें टेढ़ी पड़ गयीं। वह तेजीसे कदम बढ़ाता हुआ गृह की तरफ बढ़ा। इस अवकाशमें एक बार नवकुमारने फिर छुटकारेके लिए जोर लगाया, लेकिन व्यर्थ।

ऐसे ही समय बालूके ऊपर बहुत ही समीप पैरकी ध्वनि हुई। यह ध्वनि कापालिककी न थी। नवकुमार ने नजर घुमाकर देखा, वही मोहिनी—कपालकुण्डला थी। उसके हाथोंमें खड्ग झूल रहा था।

कपालकुण्डलाने कोई उत्तर न दिया। नवकुमारने फिर पूछा-

कपालकुण्डलाने कहा--"चुप ? बात न करना—खड्ग मेरे ही पास है—चोरी कर रखा है।"

यह कहकर कपालकुण्डला शीघ्रतापूर्वक नवकुमारके बंधन काटने लगी। पलक झपकते उसने उन्हें मुक्त कर दिया और बोली—"भागो, मेरे पीछे आओ; राह दिखा देती हूँ।"

यह कहकर कपालकुण्डला तीरकी तरह राह दिखाती आगे दौड़ी, नवकुमारने भी उसका अनुसरण किया।

★

: ७ :

खोजमें !

"And the great Lord of Luna Fell at that deadly stroKe;
As falls on most Alvervus A thunder—smitter oaK",
—Layo of Ancient Rome

इधर कपालिकने घरमें कोना-कोना खोजा, लेकिन न तो खड्ग मिला और न कपालकुण्डला ही दिखाई दी। अतः वह सन्देहमें भरा हुआ फिर वापस हुआ। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि वहाँ नवकुमार नहीं है। इससे उसे बड़ा अचरज हुआ। एक क्षण बाद ही निगाह कटी हुई लताओंपर गयी। अब स्वरूपका अनुभवकर कापालिक नवकुमारकी खोजमें लगा। लेकिन घोर अरण्यमें भागनेवाला किस राहसे किधर गया है, यह जान लेना बहुत ही कठिन है। अन्धकारके कारण किसीको राह भी दिखाई दे नहीं सकती। अतः वह वाक्य शब्द लक्ष्यकर पहले इधर-उधर भटका, लेकिन हर समय कण्ठ-ध्वनि भी सुनाई पड़ती न थी। अतएव चारों तरफ देख सकनेके लिये वह पासके ही एक बालियाड़ीके शिखर पर चढ़ गया। कापालिक एक बाजूसे चढ़ा था, किन्तु उसे यह मालूम नहीं था कि वर्षाके कारण पानीने बहकर उसके दूसरे बाजूको प्रायः गला दिया है। शिखरपर आरोहण करनेके साथ वह गला हुआ दूहा भार पाकर बड़े जोरके शब्दके साथ गिरा। गिरनेके समय उसके साथ ही पर्वत शिखर च्युत महिषकी तरह कापालिक भी गिरा।

★

: ८ :

आश्रम में

"And that very night—
Shali Romeo dear thee to Mantna".

—Romeo and Juliet

उस अमावस्याकी घोर अंधेरी रातमें दोनों ही जन एक साँससे दौड़ते हुए वनके अन्दरसे भागे। वन्यपथ नवकुमारका अजाना था, केवल सहचारिणी षोडशीके साथ-साथ उसके पीछे-पीछे जानेके अतिरिक्त दूसरा उपाय न था। लेकिन अंधेरी रातमें जङ्गलमें हर समय रमणीका पीछा करना कठिन है। कभी रमणी एक तरफ जाती थी, तो नवकुमार दूसरी तरफ। अन्तमें रमणीने कहा—"मेरा आँचल पकड़ लो।" अतः नवकुमार रमणीका आँचल पकड़ कर चले। बहुत दूर जानेपर वह लोग क्रमशः धीरे-धीरे चले। अंधेरेमें कुछ दिखाई न पड़ता था, केवल नक्षत्रलोकमें अस्पष्ट बालुका स्तूपका शिखर झलक जाता था और खद्योत-प्रकाशसे लक्ष्यका भास होता था।

कपालकुण्डला इस तरह पथिकको लिए हुए निभृत जंगलमें पहुँची। उस समय रातके दो पहर बीत चुके थे। जंगलके अन्दर अन्धकारमें एक देवालयका अस्पष्ट चूड़ा दिखाई पड़ रहा था। उसकी प्राचीर सामने थी। प्राचीरसे लगा हुआ एक गृह था। कपालकुण्डलाने प्राचीर द्वारके निकट होकर खटखटाया। बारम्बार

कराघात करनेपर भीतरसे एक व्यक्तिने कहा,—"कौन ? कपाल-कुण्डला है, क्या ?" कपालकुण्डला बोली,—"दरवाजा खोलो ?"

उत्तरकारीने आकर दरवाजा खोला। जिस व्यक्तिने आकर दरवाजा खोला, वह देवालयकी पुजारिन या अधिष्ठात्री थी। उसकी उम्र कोई ५० वर्षके लगभग होगी। कपालकुण्डलाने अपने हाथों द्वारा उस वृद्धाकी गंजी खोपड़ी अपने पास खींचकर कानमें अपने साथीके बारेमें कुछ कह दिया।

वह पुजारिन बहुत देरतक हथेलीपर गाल रखे चिन्ता करती रही। अन्तमें उसने कहा—"बात सहज नहीं है। महापुरुष यदि चाहे तो सब कुछ कर सकता है। फिर भी, माताकी कृपासे तुम्हारा अमंगल न होगा। वह व्यक्ति कहाँ है ?"

कपालकुण्डलाने 'आओ' कहकर नवकुमारको बुलाया। नव-कुमार आड़में खड़े थे, बुलाये जानेपर घरके अन्दर आये। अधि-कारीने उनसे कहा—"आज यहीं छिप रहो, कल सबेरे तुम्हें मेदिनीपुरकी राहपर छोड़ आऊँगी।"

क्रमशः बात-ही-बातमें मालूम हुआ कि अबतक नवकुमारने कुछ खाया नहीं है। अधिकारी द्वारा भोजनका आयोजन करनेपर नवकुमारने इनकार कर कहा कि केवल विश्राम की आवश्यकता है। अधिकारीने अपने रसोईघर में नवकुमारके सोनेका इन्तजाम कर दिया। नवकुमारके सोनेका उद्योग करनेपर कपालकुण्डला समुद्रतटपर पुनः लौट जानेका उपक्रम करने लगी। इसपर अधि-कारीने कपालकुण्डलाके प्रति स्नेह दृष्टिपातकर कहा—"न जाओ, थोड़ा ठहरो, एक भिक्षा है।'

कपालकुण्डला—"क्या ?"

अधिकारी—"जबसे तुम्हें देखा है, बेटी कहकर समझा और पुकारा है। माताके पैरकी शपथ खाकर कह सकती हूँ कि मातासे बढ़कर मैंने तुम्हें स्नेह दिया है। मेरी याचनाकी अवहेलना तो न करोगी ?"

कपाल०—"न करूँगी।"

अधि०—"मेरी भिक्षा है कि अब तुम वहाँ लौटकर न जाओ।"

कपाल०—"क्यों ?"

अधि०—"जानेसे तुम्हारी रक्षा न होगी।"

कपाल०—"यह तो मैं भी जानती हूँ।"

अधि०—"तो फिर आज पूछती क्यों हो ?"

कपाल०—"न जाऊँगी तो कहाँ रहूँगी ?"

अधि०—इसी पथिकके साथ देशान्तर चली जाओ।"

कपालकुण्डला चुप रह गयी। अधिकारीने पूछा–"बेटी ! क्या सोचती हो ?"

कपाल०—"जब तुम्हारा शिष्य आया था, तो तुमने कहा था, कि युवतीका इस प्रकार युवा पुरुषके साथ जाना उचित नहीं। अब जानेको क्यों कहती हो ?"

अधि०—"उस समय तुम्हारी मृत्युकी आशंका नहीं थी; विशेषतः जिस सदुपयोगकी सम्भावना थी, वह अब हो सकेगा। आओ, माताकी अनुमति ले आयें।

यह कहकर अधिकारीने दीपक हाथमें लिया तथा जाकर माताके मन्दिरका दरवाजा खोला। कपालकुण्डला भी उनके साथ-साथ गयी। मन्दिरमें आदमकद कराल काली मूर्ति स्थापित थी। दोनोंने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। अधिकारीने आचमन कर पुष्पपात्रसे एक अछिन्न बिल्वपत्र लेकर मन्त्र पूरा किया और

उसे प्रतिमाके पैरोंपर संस्थापित कर उसकी तरफ देखती रही। थोड़ी देर बाद अधिकारीने कपालकुण्डलाकी तरफ देखकर कहा—"बेटी! देखो, माताने अर्घ्य ग्रहण कर लिया। बिल्वपत्र गिरा नहीं। जिस मनौतीसे मैंने अर्घ्य चढ़ाया था, उसमें अवश्य मंगल है। तुम इस पथिकके साथ निःसंकोच यात्रा करो। लेकिन मैं विषयी लोगोंका चरित्र जानती हूँ। तुम यदि इसकी गलग्रह होकर जाओगी, तो यह व्यक्ति अपरिचित युवतीको साथ लेकर लोकालयमें जानेमें लज्जित होगा; तुमसे भी लोग घृणा करेंगे। तुम कहती हो कि यह व्यक्ति ब्राह्मण सन्तान है। इसके गलेमें यज्ञोपवीत भी दिखाई पड़ता है। यह यदि तुम्हें विवाह करके ले जाये तो मंगल है। अन्यथा मैं भी तुम्हें इसके साथ ज़ाने देनेको कह नहीं सकती।"

"वि····वा···ह!" यह शब्द बड़े ही धीमे स्वरमें कपालकुण्डलाने कहा। कहने लगी,—"विवाहका नाम तो तुम लोगोंके मुँहसे सुना करती हूँ; किन्तु विवाह किसे कहते हैं, मैं नहीं जानती। क्या करना होगा।"

अधिकारीने मुस्कराकर कहा—"विवाह ही स्त्रियोंके लिये धर्मका एकमात्र सोपान है; इसीलिए स्त्रीको सहधर्मिणी कहते हैं। जगन्माता भी भगवान् शिवकी विवाहिता हैं।"

अधिकारीने सोचा कि सब समझा दिया; कपालकुण्डलाने मनमें समझा कि सब समझ लिया। बोली—"तो ऐसा ही हो। किन्तु उन्हें त्यागकर जानेका मेरा मन नहीं करता है। उन्होंने (कापालिक) इतने दिनों तक मेरा प्रतिपालन किया है।"

अधि०—"किस लिए इतने दिनोंतक प्रतिपालन किया, यह तुम नहीं जानती। तुम नहीं जानती कि बिना स्त्रीका सतीत्व नाश किये तांत्रिक क्रिया सिद्ध नहीं होती। मैंने तन्त्रशास्त्र पढ़ा है।

माता जगदम्बा जगतकी माता हैं ये ही सतीका सतीत्व—सतियों प्रधान हैं। ये सतीत्व नाशवाली पूजा कभी ग्रहण नहीं करतीं, इसीलिये मैं महापुरुषका अनाभिमत साधन कर रही हूँ। तुम यदि भागोगी, तो कभी कृतघ्न न कहाओगी। अबतक सिद्धि-का समय उपस्थित नहीं हुआ है, केवल इसीलिये तुम्हारी रक्षा हुई है। आज तुमने जो कार्य किया है, उसमें प्राणोंकी भी आशंका है। इसीलिये कहती हूँ कि मातेश्वरी भगवानीजीकी भी ऐसी आज्ञा है, अतएव जाओ। मैं अपने यहाँ यदि रख सकती, तो अवश्य रख लेती। लेकिन तुम तो जानती हो, इसका कोई भरोसा नहीं है।

कपाल०—"तो विवाह ही हो जाये।"

यह कहकर दोनों मन्दिरसे बाहर निकलीं। एक कमरेमें कपालकुण्डलाको बैठाकर अधिकारी पुजारिन नवकुमारकी शय्याके पास जाकर सिरहाने बैठ गयी। उन्होंने पूछा—"महाशय! सो रहे हैं क्या?"

नवकुमारको नींद आ नहीं रही थी, अपनी दशाका ध्यान आ रहा था। बोले—"जी नहीं।"

अधिकारीने कहा—"महाशय! परिचय लेनेके लिए एक बार आयी हूँ। आप ब्राह्मण हैं?"

नव०—"जी हाँ।"

अधि०—"किस श्रेणीके हैं?"

नव०—"राढ़ीय।"

अधि०—"हमलोग भी राढ़ देशीय हैं—उत्कल ब्राह्मणका ख्याल न कीजियेगा। वंशमें कुलाचार्य, फिर भी इस समय माताके पदाश्रममें हूँ। महाशयका नाम?"

नव०—"नवकुमार शर्मा।"

अधि०—"निवास।"
नव०—"सप्तग्राम।"
अधि०—"आपका गोत्र?"
नव०—"बन्ध्यघटी।"
अधि०"कितनी शादियाँ की हैं?"
नव०—"केवल एक।"

नवकुमारने सारी बातें खोलकर नहीं कहीं। वास्तवमें एक भी स्त्री न थी। उन्होंने रामगोविन्द घोषकी कन्याके साथ शादीकी थी। शादीके बाद कुछ दिनों तक पद्मावती पिताके घर रही, बीच-बीचमें ससुराल भी आती थी। जब उसकी उम्र तेरह वर्षकी हुई, तो उसी समय उसके पिता सपरिवार पुरुषोत्तम दर्शनके लिए गये। उस समय पठान लोग अकबर बादशाह द्वारा बंगालसे विताड़ित होकर सदलबल उड़ीसा में थे। उनके दमनके लिए अकबर द्वारा यथोचित यत्न हो रहा था। जब रामगोविन्द घोष उड़ीसासे वापस होने लगे, तो उस समय दोनों दलोंमें युद्ध शुरू हो गया। अतः घर लौटते समय वह सपरिवार पठानोंके हाथ पड़ गये। पठान उस समय विवेकशून्य असभ्य हो रहे थे वह लोग निरपराधी पथिकोंके प्रति अर्थके लिए बल प्रकाश करने लगे। रामगोविन्द जरा कड़वे मिजाजके थे, पठानोंको गाली आदि दे बैठे। इसका फल यह हुआ, कि वह लोग गिरफ्तार कर लिए गये। अन्तमें घोष महाशयको जब अपना धर्म परित्याग करना पड़ा, तो कैदसे छुटकारा मिला।

इस तरह रामगोविन्द सपरिवार प्राण लेकर घर तो अवश्य आये, किन्तु विधर्मी मुसलमान होनेके कारण आत्मीयजन द्वारा बहिष्कृत हो गये। उस समय नवकुमारके पिता जीवित थे; अतः उन्हें भी जातिच्युत होनेके डरसे जातिभ्रष्ट पुत्रवधूका त्याग

करना पड़ा। इसके बाद नवकुमारकी अपनी पत्नीके साथ मुलाकात हो न सकी।

कुटुम्बियों द्वारा त्यक्त तथा जातिच्युत होकर रामगोविन्द घोष अधिक दिनों तक बंगालमें टिक न सके। कुछ तो इस कारणवश और कुछ राजदरबारमें उच्चपदस्थ होनेके लोभसे वह दिल्लीके महलमें जाकर रहने लगे। धर्मान्तर ग्रहण करनेपर उन्होंने सपरिवार मुस्लिम नाम धारण कर लिया था। राजमहल चले जानेके बादसे श्वसुर या पत्नीकी कोई भी खबर नवकुमारको न लगी। जानेका कोई साधन और आवश्यकता भी न थी। इसके बाद विरागवश नवकुमारने फिर अपनी शादी न की। इसीलिए कहता हूँ कि नवकुमारकी एक भी शादी नहीं हुई।

पुजारिन यह सब बात जानती न थी। उन्होंने मनमें सोचा कि—"कुलीनकी दो शादियोंमें हर्ज ही क्या है?" उन्होंने प्रकट रूपमें कहा—"आपसे एक बात पूछनेके लिए आई थी और वह बात यह है कि जिस कन्याने आपकी प्राण-रक्षा की है, उसने परहितार्थ आत्मप्राण नष्ट किया है। जिस महापुरुषके पास अबतक यह प्रतिपालित हुई है, वह बड़े भयङ्कर स्वभावका है। उसके पास फिर लौटकर जानेमें जो दशा आपकी हुई थी, वही दशा इसकी होगी। इसके प्रतिकारका कोई उपाय क्या आप निकाल सकते हैं?"

नवकुमार उठकर बैठ गये। बोले—"मैं भी ऐसी ही आशङ्का कर रहा था। आप सब कुछ जानती हैं, इसका कोई उपाय कीजिये। मेरे प्राण देनेसे भी यदि कोई उपकार हो सके—तो उसपर भी राजी हूँ। मैं तो यह विचार करता हूँ कि मैं उस नरहन्ताके पास स्वयं चला जाऊँ, तो शायद उसके प्राण बच जायेंगे।" पुजारिनने हँसकर कहा—"तुम पागल हो रहे हो।

इससे क्या फायदा होगा ? तुम्हारा प्राण-नाश तो होगा ही, साथ ही इस बेचारीपर भी उसका क्रोध प्रशमित न होगा। इसका केवल एक ही उपाय है।"

नव०—"कैसा उपाय ?"

अधि०—"आपके साथ इसका पलायन। लेकिन यह कठिन है। हमारे यहाँ रहने पर दो-एक दिनमें ही तुम लोग फिर पकड़ लिए जाओगे। इस देवालयमें उस महापुरुष का आना-जाना प्रायः हुआ करता है। अतः कपालकुण्डलाके भाग्यमें अशुभ ही दिखाई पड़ता है।"

नवकुमारने आग्रहके साथ पूछा—"मेरे साथ भागनेमें कठिनाई क्या है ?"

अधि०—"यह किसकी कन्या है—किस कुलमें इसका जन्म है, यह आप कुछ भी नहीं जानते। किसकी पत्नी है—किस चरित्रकी है, यह भी नहीं जानते। फिर क्या आप इसे संगिनी बनायेंगे ? संगिनी बनाकर ले जाने पर भी क्या आप इसे अपने घरमें स्थान देंगे ? और यदि आपने स्थान न दिया तो यह अनाथा कहाँ जायेगी ?"

नवकुमारने थोड़ा विचार करनेके बाद कहा—"अपनी प्राणरक्षिकाके लिए ऐसा कोई कार्य नहीं, जिसे मैं न कर सकूँ। यह मेरी परिवारभुक्ता होकर रह सकेगी।"

अधि०—ठीक है। लेकिन जब आपके आत्मीय स्वजन पूछेंगे कि यह किसकी स्त्री है तो आप क्या उत्तर देंगे ?

नवकुमारने चिन्ता करके कहा—"आप ही इसका परिचय मुझे बता दें। आप जो कहेंगी मैं वही कहूँगा।"

अधि०—"अच्छा। लेकिन इस लम्बी राहमें कोई पन्द्रह दिनों तक एक दूसरेकी बिना सहायताके कैसे रह सकोगे ? लोग देख-सुनकर क्या कहेंगे ? फिर, सम्बन्धियोंसे क्या कहोगे ? इधर मैं भी इस

कन्याको पुत्री कह चुकी हूँ; मैं भी एक अज्ञात युवकके साथ परदेश कैसे जाने दे सकती हूँ ?"

बीचकी दलाल, दलालीमें कम नहीं हैं।

नवकुमार ने कहा—"आप भी साथ चलिए।"

अधि०—"मैं साथ जाऊँगी तो भवानीकी पूजा कौन करेगा ?"

नवकुमारने क्षुब्ध होकर कहा—"तो क्या आप कोई उपाय कर नहीं सकतीं ?"

अधि०—"उपाय केवल एक है, लेकिन वह भी आपकी उदारता पर निर्भर करता है।"

नव०—"वह क्या है ? मैं किस बातमें अस्वीकृत हूँ ? क्या उपाय है, बताइये ?"

अधि०—"सुनिये। यह ब्राह्मण कन्या है। इसका हाल मैं अच्छी तरह जानती हूँ। यह कन्या बाल्यकालमें ख्रष्टानोंद्वारा अपहृत होकर ले जायी जा रही थी, और जहाज टूट जानेके कारण इसी समुद्रतटपर छोड़ दी गयी। वह सब हाल बादमें आपको उस कन्यासे ही मालूम हो जायगा। इसके बाद कापालिकने इसे अपनी सिद्धिका उपकरण बनाकर इसका प्रतिपालन किया। शीघ्र ही वह अपना प्रयोजन सिद्ध करता। यह अभी तक अविवाहित है और साथ ही चरित्रमें पवित्र है। आप इसके साथ शादी कर लें। कोई कुछ भी इस प्रकार कह न सकेगा। मैं यथाशास्त्र विवाह कार्य पूरा करा दूँगी।"

नवकुमार शय्यासे उठ खड़े हुए। वह तेजीसे उस कमरेमें इधर-उधर घूमने लगे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। पुजारिनने थोड़ी देर बाद फिर कहा—"आप इस समय सोयें। मैं कल बड़े तड़के जगा दूँगी। यदि इच्छा होगी, अकेले चले जाइयेगा। मैं आपको मेदिनीपुरकी राहपर छोड़ आऊँगी।"

★

: ९ :

देव-मन्दिर में

"कण्व ! अलं रुदितेन, स्थिरा भव, इतः पन्थानमालोकय।"

—शकुन्तला।

सबेरे बड़े तड़के ही अधिकारी पुजारिन नवकुमारके पास आयीं। उन्होंने देखा कि अभीतक नवमाकुर सोये न थे। पूछा—"अब बताइये, क्या करना चाहिये ?"

नवकुमारने कहा—"आजसे कपालकुण्डला मेरी धर्मपत्नी हुई। इसके लिए यदि मुझे संसारका त्याग भी करना पड़ेगा तो करूँगा। कन्यादान कौन करेगा ?"

पुजारिनका चेहरा हर्षसे खिल उठा। मन-ही-मन सोचा—"इतने दिनों बाद जगदम्बाकी कृपासे, जान पड़ता है, मेरी कपालिनीका ठिकाना लगा।" प्रकट कहा—"मैं कन्यादान करूँगी।" यह कहकर वह अपने कमरे में गयीं और एक पुरानी थैलीमें से एक पत्रा निकाल लायीं। पत्रा पुराना ताड़पत्रका था। उसे मजेमें देखकर उन्होंने कहा—"यद्यपि आज लग्न नहीं है, लेकिन शादीमें कोई हर्ज नहीं। गोधूलि-कालमें कन्यादान करूँगी। तुम्हें आज केवल व्रत रहना होगा, शेष लौकिक कार्य घर जाकर पूरा कर लेना। एक दिनके लिए तुम लोगों को छिपाकर रख सकूँगी। ऐसा स्थान मेरे पास है। आज यदि कापालिक आयेगा तो तुम्हें खोज न पायेगा। इसके बाद शादी हो जानेपर कल सबेरे सपत्नीक घर चले जाना।"

नवकुमार इसपर राजी हो गये। इस अवस्थामें जहाँतक

सम्भव हो सका, वहाँतक यथाशास्त्र कार्य हुआ। गोधूलिलग्नमें नवकुमारके साथ कापालिक पालित संन्यासिनीका विवाह हो गया।

कापालिकको कोई खबर नहीं लगी। दूसरे दिन सबेरे तीनों जन यात्राका उद्योग करनेमें लगे। अधिकारी उन्हें मेदिनीपुरकी राह पर छोड़ आयेंगी।

यात्राके समय कपालकुण्डला कालिका देवीको प्रणामके लिये गयी। भक्तिभावसे प्रणाम कर पुष्पपात्रसे एक अभिन्न बिल्वपत्र उठाकर कपालकुण्डलाने देवीके चरणोंपर चढ़ा दिया और ध्यानपूर्वक उसे देखती रही। लेकिन वह बिल्वपत्र गिर गया।

कपालकुण्डला बड़ी ही भक्तिपरायण है। बिल्वपत्रको दैवप्रतिमा चरणसे च्युत होते देखकर बहुत डरी। उसने यह हाल अधिकारीसे भी कहा। अधिकारी भी दुखी हुई। बोली—"अब दूसरा कोई चारा नहीं है। अब पति ही तुम्हारा धर्म है। पति यदि श्मशानमें भी जाये, तो तुम्हें साथ ही जाना होगा। अतएव निःशब्द होकर चलो

सब लोग चुपचाप चले। बहुत दिन चढ़े, वह लोग मेदिनीपुरकी राहमें पहुँचे। वहाँतक पहुँचाकर अधिकारी बिदा हुई। कपालकुण्डला रोने लगी। पृथ्वीमें जो कपालकुण्डलाको सबसे ज्यादा प्रिय था, वह विदा हो रहा था, उससे अब मुलाकात नहीं होनेको थी।

अधिकारी भी रोने लगीं। आँखोंका आँसू पोछकर कपाल-कुंडलासे धीरेसे कहा—"बेटी, तू तो जानती है, भगवतीकी कृपासे मुझे पैसोंकी कमी नहीं है। हिलजीका प्रत्येक व्यक्ति पूजा करता है। तेरी धोतीके किनारे मैंने जो बाँध दिया है, उसे स्वीकार कर अपने पतिको देकर कहना पालकी आदि का प्रबन्ध

कर लेंगे। बेटी! अपनेको सन्तान समझ कर मेरी याद भुला न देना।"

अधिकारी यह देखते हुए रोकर विदा हुई। कपालकुण्डला भी रोती हुई आगे बढ़ी।

द्वितीय खण्ड

: १ :

शाही राहपर

"—There-now lean on me,
Place your foot here.

—Manfred.

किसी लेखकने कहा है—"मनुष्यका जीवन काव्य-विशेष है।" कपालकुण्डलाके जीवनकाव्यका एक सर्ग समाप्त हुआ। इसके बाद ?

नवकुमारने मेदिनीपुर पहुँचकर अधिकारी प्रदत्त धनके बलसे कपालकुण्डलाके लिए एक दासी, एक रक्षक और शिविका-वाहक नियुक्त कर, उसे शिविकापर चढ़ाकर आगे भेजा। पैसे अधिक न होनेके कारण वह स्वयं पैदल चले। नवकुमार एक दिन पहलेके परिश्रमसे थके हुए थे। दोपहरके भोजनके बाद पालकी ढोनेवाले कहार उन्हें पीछे छोड़ बहुत आगे निकल गये। क्रमशः सन्ध्या हुई, शीतकालके विरल बादलोंसे आकाश भरा हुआ था। सन्ध्या भी बीती। पृथ्वीने अन्धकार वस्त्रसे अपनेको ढंक लिया। कुछ बूँदा-बाँदी भी होने लगी। नवकुमार कपालकुण्डलाके साथ एकत्र

होनेके लिए व्यग्र होने लगे। उन्होंने मनमें सोचा था कि आगेकी सरायमें मुलाकात होगा, लेकिन पालकी वहाँ भी न थी। रात कोई ६ बजेका समय हो आया। नवकुमार तेजीसे पैर बढ़ाते हुए आगे बढ़ रहे थे। एकाएक कोई कड़ी चीज उनके पैरके नीचे आयी और ठोकर लगी। पैरकी ठोकरसे वह वस्तु कड़कड़ाकर टूटी। नवकुमार खड़े हो गये; फिर पैर बढ़ाया, लेकिन फिर ऐसा ही हुआ। पैरसे लगनेवाली चीजको हाथसे उठाकर देखा, वह टूटा हुआ तख्ता था।

आकाशके बादलोंसे घिरे रहनेपर भी प्रायः ऐसा अन्धकार नहीं रहता, कि कोई बड़ी वस्तु दिखाई न पड़े। सामने कोई बहुत बड़ी चीज पड़ी थी। नवकुमारने गौरसे देखकर जान लिया कि वह चीज टूटी हुई पालकी है। पालकी देखते ही नवकुमारका हृदय काँप उठा और कपालकुण्डलाकी विपद्की आशंका हुई। शिविकाकी तरफ आगे बढ़नेपर किसी कोमल वस्तुसे उनका पदस्पर्श हुआ। यह स्पर्श कोमल, मनुष्य जैसा जान पड़ा। तुरन्त बैठकर हाथसे टटोलकर देखा कि मनुष्य शरीर ही था। लेकिन साथ ही कोई द्रव्यपदार्थ भी हाथसे लगा है, मनुष्य शरीर लेकिन बर्फ जैसा ठण्डा। नाड़ी देखी, चलती न थी। क्या यह मृत है? विशेष मन लगाकर देखा श्वास-प्रश्वासका शब्द सुनाई पड़ रहा था। श्वास है, तो नाड़ी क्यों नहीं चलती है? क्या यह रोगी है? नाकपर हाथ रखकर देखा, साँस बिलकुल जान न पड़ी। फिर यह शब्द कैसा? शायद कोई जीवित व्यक्ति भी यहाँ है; यह सोचकर उन्होंने पूछा—"कोई यहाँ जिन्दा है?"

धीमे स्वरमें उत्तर मिला—"है।"

नवकुमारने पूछा—"तुम कौन हो?"

उत्तर मिला—"तुम कौन हो?" नवकुमारको यह स्वर स्त्रीके जैसा जान पड़ा।

व्यग्र होकर उन्होंने पूछा—"क्या कपालकुण्डला ?"

स्त्रीने कहा—"कपालकुण्डला कौन है, मैं नहीं जानती—मैं पथिक हूँ, अवश्य ही डाकुओंके द्वारा निकुण्डला हुई हूँ ।"

व्यंग सुनकर नवकुमार कुछ प्रसन्न हुए। पूछा—"क्या हुआ है ?"

उत्तर देनेवालीने कहा—"डाकुओंने मेरी पालकी तोड़ दी मेरे एक रक्षकको मार डाला । बाकी सब भाग गये और डाकुओंने मेरे अंगके सारे गहने लेकर मुझे पालकीसे बाँध दिया ।"

नवकुमारने अंधकारमें ही जाकर देखा कि वस्तुतः एक स्त्री पालकीमें कसकर कपड़ेसे बँधी है । नवकुमारने शीघ्रतापूर्वक उसके बन्धन खोलकर पूछा—"क्या तुम उठ सकोगी ?" स्त्रीने जवाब दिया—"मेरे पैरमें लाठीकी चोट लगी है। पैरमें दर्द है, फिर भी, जरा सहायता मिलते ही उठ खड़ी हूँगी ।"

नवकुमारने हाथ बढ़ा दिया । रमणी उसकी सहायतासे उठी। नवकुमारने पूछा—"क्या चल सकोगी ?"

इस प्रश्नका कोई जवाब न देकर रमणीने पूछा—"आपके पीछे क्या कोई पथिक आ रहा था ?"

नवकुमारने कहा—"नहीं ।"

स्त्रीने फिर पूछा—"यहाँसे चट्टी कितनी दूर है ?"

नवकुमारने जवाब दिया—"कितनी दूर है, यह तो मैं नहीं कह सकता—लेकिन जान पड़ता है कि निकट ही है ।"

स्त्रीने कहा—"अँधेरी रातमें अकेली जंगलमें बैठकर क्या करूँगी; आपके साथ अगली मञ्जिल तक चलना ही उचित है। शायद कोई सहारा पानेपर चल सकूंगी ।"

नवकुमारने कहा—"विपद्‌कालमें सङ्कोच करना मूर्खता है । मेरे कन्धेका सहारा लेकर चलो ।"

स्त्रीने भी मूर्खका कार्य न किया। नवकुमारके कन्धेका सहारा लेकर वह चली।

सचमुच चट्टी करीब ही थी। उन दिनोंमें चट्टीके करीब भी ऐसे दुष्काण्ड हुआ करते थे। इसमें डाकू कोई संकोच करते न थे। थोड़ी ही देर बाद नवकुमार उस स्त्रीको साथ लेकर चट्टीमें जा पहुँचे।

नवकुमारने देखा कि इसी चट्टीमें कपालकुण्डला भी पहुँच गयी है। उनकी दासियोंने उनके लिये एक कमरा ले रखा था। नवकुमारने अपने साथ आई उस रमणीके लिये अपने बगलकी-कोठरी ठीक कर उसे उसमें बैठाया। आज्ञानुसार घरकी मालकिन एक प्रदीप उस कमरेमें रख गयी। प्रदीप-प्रकाशमें अब नवकुमारने देखा कि वह रमणी असाधारण सुन्दरी है। रूपराशितरंगमें उसके यौवनकी शोभा श्रावण मासकी भरी हुई नदीकी तरह उछली पड़ती है।

: २ :

सरायमें

'कैषा योषित प्रकृतिचपला।"

—उद्धवदूत।

यदि रमणी निर्दोष सौन्दर्यविशिष्टा होती, तो कहता, पुरुष पाठक! यह आपकी गृहिणी जैसी सुन्दरी है। और सुन्दरी पाठिका रानी! यह आपकी शीशेमें पड़नेवाली प्रति छाया जैसी

है। ऐसा होनेसे रूपवर्णनका शीघ्र ही अन्त हो जाता। दुर्भाग्यवश यह सर्वाङ्ग-सुन्दरी नहीं है, इसलिए निरस्त होना पड़ता है।

यह निर्दोष सुन्दरी नहीं है, यह कहनेका प्रथम कारण यह है कि इसका शरीर मध्यम आकृतिकी अपेक्षा कुछ दीर्घ है। दूसरे अधरोष्ठ चिपटे हैं, तीसरे वास्तविक रूपमें यह गोरी भी नहीं है।

शरीर कुछ दीर्घ अवश्य है, लेकिन हाथ, पैर, हृदयादि सर्वाङ्ग सुडौल तथा निठोल हैं। वर्षाकालमें लता जैसे अपने पत्रादिकी बहुलताके कारण भरीपूरी और झलझलाती रहती है, वैसे ही इस कामिनीकी देह-लता भी पूर्णतासे झलझला रही है; अतएव शरीरके ईषद्दीर्घ होनेपर भी वह पूर्णताके कारण शोभाका ही कारण हो गया है, जिन्हें हम वास्तवमें गौरांगी कहते हैं, उनमें किसीका रंग पूर्णचन्द्र कौमुदीकी तरह, किसीका ईषदारक्त ऊषा जैसा होता है। इस रमणीका वर्ण इन दो में कोई भी नहीं, अतः इसे प्रकृत गौरांगी न कहे जानेपर भी इसका वर्ण मनोमुग्धकर अवश्य है। जो हो, यह श्यामवर्णा है। 'श्यामा' या 'श्यामवर्ण कृष्ण' का जो रंग वर्णित है, यह वह रंग नहीं है। तप्तकाञ्चनविशिष्ट श्यामवर्ण है। यह पूर्णचन्द्रकरलेखा या हेमाम्बुदकिरीटिनी ऊषा यदि गौरांगियोंकी प्रतिमा है, तो वसन्तजनित नवआम्रमञ्जरीकी शोभा इन श्यामांगियोंकी भी है। पाठकोंमें अनेक गौरांग वर्णकी प्रतिष्ठा करते होंगे, लेकिन यदि कोई श्याम की मायासे मुग्ध है, तो उसे हम वर्णज्ञान शून्य नहीं कह सकते। इस बातसे जिन्हें विरक्ति पैदा होती हो, वह कृपा करके एकबार नवमञ्जरीविहारी भ्रमरश्रेणीकी तरह इस उज्ज्वल श्यामललाट विलम्बीकी याद करें, उस सप्तमी चन्द्राकृति ललाटके नीचेकी वक्र भृकुटिकी याद करें, उन पके हुए आम्रपुष्पके रंगवाले कपोलोंको याद करें, उसके बीच पक्व बिम्बाधर ओष्ठोंकी याद करें, तो इस अपरिचिता रमणीको

सुन्दरी-प्रधान समझ और अनुभव कर सकेंगे। दोनों आँखें एकदम बड़ी-बड़ी नहीं हैं, लेकिन बड़ी ही बङ्किम सुरेखावाली हैं और उनमें बड़ी ही चमक है। उसका कटाक्ष स्थिर लेकिन मर्म-भेदी है। यदि तुम्हारे ऊपर उसकी दृष्टि पड़े तो यही समझोगे कि वह तुम्हारे हृदय तकका हाल देख रही है। देखते-देखते उस मर्मभेदी दृष्टिसे भावान्तर हो जाता है, आँखें सुकोमल स्नेहमय रससे गली जाती हैं और कभी-कभी उसमें सुखावेशजनित क्लान्ति ही दिखाई देती है। मानो वह नयन नहीं, मन्मथकी स्वप्न-शय्या है। कभी लालसा विस्फारित मदनरससे झलझलाती रहती है और कभी उस लोल कटाक्षमें मानो बिजली कौंधती रहती है। मुखकी कान्तिमें दो अनिर्वचनीय शोभा हैं; पहली सर्वत्रगामिनी बुद्धि का प्रभाव, दूसरी महान् आत्मगरिमा। इस कारण जब वह मराल-जैसी ग्रीवा टेढ़ी कर खड़ी होती है, तो सहज ही जान पड़ता है कि, यह रमणीकुलराज्ञी है।

सुन्दरी की उम्र कोई सत्ताईस वर्ष की होगी, मानों भादों मासकी भरी हुई नदी। भादों मासके नदी-जलकी तरह रूपराशि झलझला रही है—उछली पड़ती है। वर्षाकी अपेक्षा नयनकी सर्वापेक्षा, उस सौन्दर्यकाबहाव मुग्धकर है। पूर्ण यौवन के कारण समूचा शरीर थोड़ा चंचल है, बिना वायुके नवशरत्की नदी जैसे मंथर चंचला होती है, ठीक वैसी ही चंचल; वह चंचलता क्षण-क्षणपर नये-नये शोभाके विकासके कारण है। नवकुमार निमेषशून्य हो उस नित्य नव शोभा को निरख रहे थे।

सुन्दरी नवकुमारकी निमेषशून्य आँखें देखकर बोली—'आप क्या देखते हैं ? मेरा सौन्दर्य !"

नवकुमार भले आदमी थे, अप्रतिभ होकर, शर्माकर उन्होंने आँखें नीची कर लीं। नवकुमारको निरुत्तर देख अपरिचित रमणीने

फिर हँसकर कहा—'आपने क्या कभी किसी युवतीको देखा नहीं है ? अथवा मैं ही बहुत सुन्दर दिखाई देती हूँ ?"

यह बात सहज ही कही गयी होती तो तिरस्कार जैसी जान पड़ती, लेकिन रमणीने जिस हँसीके साथ कहा था, उससे व्यंगके अतिरिक्त और कुछ जान नहीं पड़ा। नवकुमारने देखा कि रमणी बड़ी मुखरा है; फिर भला मुखराकी बातका जवाब क्यों न देते। बोले- "मैंने युवतियोंको देखा है, लेकिन ऐसी सुन्दरी नहीं।"

रमणीने सगर्व पूछा—"क्या एक भी नहीं!"

नवकुमारके हृदयमें कपालकुण्डलाका रूप जाग रहा था; उन्होंने भी सगर्व उत्तर दिया—"एक भी नहीं, ऐसा तो नहीं कह सकता।"

पत्थरपर मानो लोहेका आघात हुआ। उत्तरकारिणीने कहा- "तब तो ठीक है? क्या वह आपकी गृहिणी हैं ?"

नव०—"क्यों ? गृहिणी, मनमें क्या सोचती हो ?"

स्त्री—"बंगाली लोग अपनी गृहिणीको सबसे ज्यादा सुन्दर समझते हैं।"

नव०—"मैं बंगाली अवश्य हूँ, लेकिन आप भी तो बंगालीकी तरह ही बातें कर रही हैं, तो आप किस देशकी हैं ?"

युवतीने अपनी पोशाककी लटक देखकर कहा—"अभागिनी बंगाली नहीं है। पश्चिम प्रदेशवासी मुसलमान है।"

नवकुमारने मजेमें देखकर सोचा, पहनावा तो जरूर पश्चिमदेशीय मुसलमानोंकी तरह है, लेकिन बोली बिल्कुल बंगालियों जैसी है। थोड़ी देर बाद तरुणीने कहा—"महाशय वाक्चातुरीसे आपने मेरा परिचय तो ले लिया—अब आप अपना परिचय दें। जिस घरमें वह अद्वितीय रूपसी गृहिणी है, वह घर कहाँ है ?"

नवकुमारने कहा—"मेरा घर सप्तग्राम है।"

विदेशिनीने कोई उत्तर न दिया। सहसा मुँह फेरकर वह प्रदीप उज्ज्वल करने लगी।

थोड़ी देर बाद बिना मुँह उठाये ही बोली—'दासीका नाम मोती है। महाशयका नाम क्या है, सुन सकती हूँ !'

नवकुमारने कहा—"नवकुमार शर्मा।"

प्रदीप बुझ गया।

: ३ :

सुन्दरी-संदर्शन

"धरो देवि मोहन मूरति
देह आज्ञा, सजाई वरवधु आनि
नामा आभरण।"

—मेघनाद वध

नवकुमारने गृहस्वामिनीको बुलाकर दूसरा दीपक लानेके लिए कहा। दूसरा दीपक लाये जानेके पहले नवकुमारने उस सुन्दरीको एक दीर्घ निश्वास लेते सुना। दीपक लाये जानेके थोड़ी देर बाद ही वहाँ एक नौकर वेशमें मुसलमान उपस्थित हुआ। विदेशिनीने उसे देखकर कहा—"यह क्या, तुम लोगोंको इतनी देर क्यों हुई ? और सब कहाँ हैं ?"

नौकरने कहा—"पालकी ढोनेवाले सब मतवाले हो रहे थे। उन सबको बटोरकर ले आनेमें हमलोग पालकीसे बहुत ही पीछे छूट गये। इसके बाद टूटी पालकी और आपको न देखकर हमलोग पागलसे हो गये। अभी कितने ही उसी जगह हैं। कितने दूसरी तरफ आपकी खोजमें गये हैं। मैं खोजनेके लिए इधर आया।"

मोतीने कहा—"उन सबको ले आओ।"

नौकर सलाम कर चला गया। विदेशिनी कुछ समय तक ठुड्ढीपर हांथ रखे बैठी रही।

नवकुमारने विदा होना चाहा। इसके बाद मोती बीबीने स्वप्नोत्थिताकी तरह एकाएक खड़ी होकर पूछा—"आप कहाँ रहेंगे?"

नव०—यहीं बगलके कमरेमें।

मोती०—आपके कमरेके सामने एक पालकी रखी थी। क्या आपके साथ कोई है?

"मेरी स्त्री मेरे पास है।"

मोती बीबीने फिर व्यङ्गका अवकाश पाया। बोली—"क्या वही अद्वितीय रूपवती है?"

नव०—देखनेसे स्वयं समझ सकेंगी।

मोती०—क्या मुलाकात हो सकेगी?

नव०—(विचारकर) हर्ज क्या है?

मोती०—तो कृपा कीजिए न! अद्वितीय रूपवतीको देखनेकी बड़ी इच्छा होरही है। आगरे जाकर मैं कहना चाहती हूँ। लेकिन अभी नहीं—अभी आप जायँ। थोड़ी देर बाद मैं खबर दूँगी।

नवकुमार चले गये। थोड़ी देर बाद बहुतेरे आदमी, दास-दासी और वाहक सन्दूक आदि लेकर उपस्थित हुए। एक पालकी भी आयी। उसमें एक दासी थी। इसके बाद नवकुमारके पास खबर आई—"बीबी आपको याद करती हैं।"

नवकुमार मोती बीबीके पास फिर वापस आए। देखा, इस बार दूसरा ही रूपान्तर है। मोती बीबीने पूर्व पोशाक बदलकर स्वर्णमुक्तादि शोभित कासकार्ययुक्त वेश-भूषा की है। सूनी देह अलंकारोंसे सज गयी है। जिस जगह जो पहना जाता है—कानोंमें, कबरीमें, कपालमें, आँखोंकी बगलमें, कण्ठमें, हृदयपर बाहू आदि सब जगह सोनेके आभूषणोंमें हीरकादि

रत्न झलक रहे थे। नवकुमारकी आँखें नाच उठीं। अधिकांश स्त्रियाँ अधिक आभूषण पहन लेनेपर श्री हीन हो जाती हैं—अनेक सजाई गयी पुतलीकी तरह दिखाई पड़ने लगती हैं। लेकिन मोती बीबीमें श्रीहीनता नहीं आयी थी। प्रभूत नक्षत्रमाला-भूषित आकाशकी तरह उसकी देहपर अलंकार शोभा दे रहे थे। शरीर-की माधुरीपर वह अलंकार मिलकर अद्भुत छटा दिखा रहे थे। शरीरका सौन्दर्य और बढ़ गया था। मोती बीबीने नवकुमारसे कहा—"महाशय! चलिए आपकी पत्नीके साथ परिचय प्राप्त कर आयें।" नवकुमार ने कहा—"इसके लिए अलंकार पहननेकी तो कोई जरूरत थी नहीं। मेरे परिवारमें तो गहना है नहीं।"

मोती बीबी—गहनोंको दिखानेके लिये ही पहन लिया है। आप नहीं जानते, स्त्रियोंके पास गहने रहें और न दिखायें, यह हो नहीं सकता। यह स्त्री-प्रकृति है। खैर चलिये चलें।

नवकुमार मोती बीबी को साथ लेकर चले। जो दासी पालकी पर आयी थी, वह भी साथ चली। इसका नाम पेशमन् है।

कपालकुण्डला दुकान जैसे कमरेकी मिट्टीके फर्शपर बैठी थी। एक धीमी रोशनीका दीपक जल रहा था। आबद्ध निबिड़ केशराशि पीछेके हिस्सेमें अन्धकार किए हुई थी। मोती बीबीने पहले उन्हें जब देखा, तो होठके किनारेकी ओर आँखोंमें कुछ हँसीकी रेखा दिखाई दी। अच्छी तरह देखनेके लिए वह दीपक उठाकर कपाल कुण्डलाके चेहरेके पास ले आई।

लेकिन देखते ही फिर हँसी उड़नछू हो गयी। मोती बीबीका चेहरा गम्भीर हो गया। वह अनिमेष लोचन से सौन्दर्य देखती रह गयी। कोई कुछ न बोला। मोती मुग्ध थी—कपालकुण्डला कुछ विस्मित थी।

थोड़ी देर बाद मोती बीबी अपने शरीरसे गहने उतारने

लगी। इस तरह अपने शरीर से गहने उतारकर वह एक-एक करके कपालकुण्डलाको पहनाने लगी। कपालकुण्डला कुछ न बोली। नवकुमार कहने लगे—"यह क्या करती हैं?" मोती बीबीने इसका कोई जवाब नहीं दिया।

अलंकार-सज्जा समाप्त कर और अच्छी तरह निरखकर मोती बीबीने कहा—"आपने सच कहा था। ऐसे फूल राजोद्यान में भी नहीं खिलते। दुःख यही है कि इस रूपराशिको राजधानीमें न दिखा सकी। यह गहने इसी शरीरके उपयुक्त हैं। इसीलिए मैंने पहना दिए हैं। आप भी इन्हें देखकर कभी-कभी मुखरा विदेशिनी-को याद किया करेंगे।"

नवकुमारने चमत्कृत होकर कहा—"यह क्या? यह सब बहु-मूल्य अलंकार हैं, मैं इन्हें क्यों लूँ?"

मोती ने कहा—"ईश्वर की कृपा से मेरे पास बहुत हैं। मैं निराभरणा न हूँगी। इन्हें पहनाकर यदि सुखी होती हूँ, तो उसमें व्याघात क्यों उपस्थित करते हैं?"

यह कहती हुई मोती बीबी दासीके साथ वापस चली गई। अकेलेमें पहुँचनेपर पेशमनने मोती बीबीसे पूछा—"बीबी यह शख्स कौन है?"

यवनबालाने उत्तर दिया—"मेरा खसम।"

★

: ४ :

पालकी सवारीसे

—"खुलिन् सत्वरे,
कंकण, वलय, सींथि कण्ठमाला,
कुण्डल, नूपुर, काँची।"

—मेघनाद वध

अब उन गहनोंकी क्या दशा हुई सुनो। मोती बीबीने गहना रखनेके लिए हाथीदाँतका बना एक बक्स भेज दिया। उस सन्दूक-पर चाँदी जड़ी हुई थी। डाकुओंने बहुत थोड़ी ही चीजें लूटी थीं। पासमें जो कुछ था वही लूटा; इसके अतिरिक्त पीछे सेवकोंके पास जो था, वह बच गया था।

नवकुमारने दो एक गहने कपालकुण्डलाके शरीरपर छोड़कर शेष सबको सन्दूकमें रख दिया। दूसरे दिन सबेरे मोतीबीबीने वर्द्धमानकी तरफ और नवकुमारने सप्तग्रामकी तरफ यात्रा की। नवकुमारने कपालकुण्डलाको पालकीपर बैठा गहनोंका सन्दूक साथ ही रख दिया। कहार सहज ही नवकुमारको पीछे छोड़ आगे बढ़ गये। कपालकुण्डला पालकीका दरवाजा खुला रख चारों तरफ देखती जा रही थी। एक भिक्षुक उसे देख दौड़ लगाकर भीख माँगता हुआ पालकीके साथ-साथ चलने लगा।

कपालकुण्डलाने कहा—"मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, तुम्हें क्या दूँ?" भिक्षुकने कपालकुण्डलाके अंगपरके गहने दिखाकर कहा—"यह क्या कहती हो माँ! तुम्हारे पास हीरे-मोतीके गहने हैं—तुम्हारे पास क्यों नहीं?"

कपालकुण्डलाने पूछा—"गहना पा जानेसे तुम सन्तुष्ट हो जाओगे ?"

भिक्षुक कुछ विस्मित हुआ। भिक्षुककी आशा असीमित होती है। और बोला—"क्यों नहीं, माँ।"

कपालकुण्डलाने अकपट हृदयसे कुल गहने, मय सन्दूकके भिखमंगेको दिए। शरीरके गहने भी उतारकर दे दिए।

भिक्षुक विह्वल हो गया। दास-दासी कोई भी जान न सका। भिक्षुक का विह्वल भाव क्षणभरका था। इधर-उधर देखकर एक साँससे एक तरफ भागा। कपालकुण्डलाने सोचा—"भिक्षुक भागा क्यों ?"

: ५ :

स्वदेशमें

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
कर्णे लीलं कथयितुमभू-द्दीननस्पर्श लोभात्।

—मेघदूत

नवकुमार कपालकुण्डलाको लिये हुए स्वदेश पहुँचे, नवकुमार पितृहीन थे; घरमें विधवा माता थी और दो बहनें थीं। बड़ी विधवा थी, जिससे पाठक लोग परिचित न हो सकेंगे; दूसरी श्यामासुन्दरी सधवा होकर भी विधवा है, क्योंकि वह कुलीनकी स्त्री है। वह दो-एक बार हम लोगोंको दर्शन देगी।

दूसरी अवस्थामें यदि नवकुमार इस तरह अज्ञातकुलशीला तपस्विनीको विवाह कर घर लाये होते, तो उनके आत्मीय-स्वजन कहाँ तक सन्तुष्ट होते, यह बताना कठिन है। किन्तु वास्तवमें उन्हें

इस विषयमें कोई क्लेश उठाना न पड़ा। सभी लोग उनके वापस पहुँचनेमें हताश हो चुके थे। सहयात्रियोंने लौटकर बात उड़ा दी थी कि नवकुमारको शेरने मार डाला। पाठक सोच सकते हैं, इन सत्यवादियोंने आत्मविश्वासके बलपर ही यदि ऐसा कहा होगा, तो यह ठगकी कल्पनाशक्तिका अपमान करना होगा। लौटकर वापस आनेवाले कितने ही यात्रियोंने तो यहाँतक कह दिया था कि नवकुमारको व्याघ्र द्वारा आक्रान्त होते उन्होंने अपनी आँखों देखा है। कभी-कभी तो उस शेरको लेकर आपसमें तर्क-वितर्क हुये। कोई कहता,—"वह आठ हाथ लम्बा रहा होगा।" दूसरेने कहा,—"नहीं-नहीं, वह पूरा चौदह हाथ लम्बा था।" इसपर पूर्व परिचित यात्रीने कहा था—"जो भी हो, मैं तो बाल-बाल बच गया था। बाघने पहले मेरा पीछा किया था, लेकिन मैं भाग गया, बड़ी चालाकीसे भागा, किन्तु क्या कहें, नवकुमार बेचारा भाग न सका। वह साहसी न था, यदि भागता तो शायद मेरी तरह वह भी बच जाता।"

जब यह सब गल्प नवकुमारकी माताके कानोंमें पहुँची तो घरमें वह क्रन्दनका कुहराम मचा, कि कई दिनोंतक शान्त न हुआ। एकमात्र पुत्रकी मृत्युकी खबरसे माता मृत प्राय हो गयी। ऐसे समय जब नवकुमार सस्त्री घर वापस लौटे, तो कौन पूछे कि वह किस जातिकी है और किसकी कन्या है? मारे प्रसन्नताके सब मत्त थे।

नवकुमारकी माताने बड़े आदरके साथ बहूको घरमें बैठाया। जब नवकुमारने देखा कि घरवालोंने कपालकुण्डलाको सादर ग्रहण कर लिया, तो उनके हृदयमें अपार आनन्द प्राप्त हुआ। यद्यपि उनके हृदयमें कपालकुण्डलाका निवास हो रहा था, फिर भी घरमें कहीं अनादर न हो, इस भयसे अबतक उन्होंने विशेष प्रणय लक्षण

दिखाया न था। यही कारण था कि उस समय वह अकस्मात् कपालकुण्डलाके पाणिग्रहणके प्रश्नपर सम्मत न हुये थे। यही कारण था कि राहमें गृहपर न आनेतक नवकुमारने प्रणयसम्भाषण न किया था। उन्होंने अबतक प्रयण-सागरमें अनुरागकी वायुको हिलोरें लेने न दिया। लेकिन वह आशंका दूर हो गयी। वेगसे बहनेवाली जलराशिको जिस प्रकार बाँधसे बाँध दिया जाये और बाँध टूटनेपर जलका उच्छ्वास उछल पड़े, वही दशा नवकुमार की हुई।

यह प्रेमका आविर्भाव केवल बातोंमें नहीं होता था; लेकिन कपालकुण्डलाको देखते ही सजल-लोचन हो, अनिमेष लोचनसे देखते रह जाते हैं, उससे ही प्रकट होता है; जिस प्रकार निष्प्रयोज़न हो, प्रयोजनकी कल्पना कर वह कपालकुण्डलाके पास आते, इससे प्रकट होता है; बिना प्रसंगके जिस प्रकार बातोंमें कपालकुण्डला का प्रसंग उत्थापित करते, उससे प्रकट होता है। यहाँ तक कि उनकी प्रकृति भी बदलने लगी। जहाँ चंचलता थी, वहाँ गम्भीरता आने लगी; जहाँ अनमने रहते थे, वहाँ वह हर समय प्रसन्न रहने लगे। नवकुमारका चेहरा सदा प्रसन्नतासे खिला रहने लगा। हृदयके स्नेहका आधार हो जानेके कारण हर एकके प्रति स्नेहका बर्ताव होने लगा। विरक्तिकर लोगोंके प्रति भी स्नेहका बर्ताव होने लगा। मनुष्यमात्र प्रेमपात्र हो गया। पृथ्वी मानो सत्कर्मसाधनके लिये ही है, नवकुमारके चरित्रसे यही परिलक्षित होने लगा। समूचा संसार सुन्दर दिखाई देने लगा। सच्चा प्रणय कर्कशको भी मधुर बना देता है, असत्यको सत्य, पापीको पुण्यात्मा और अन्धकारको आलोकमय बना देता है।

और कपालकुण्डला; उसका क्या भाव था? चलो, पाठक! एक बार उसका भी दर्शन करें।

★

: ६ :

अनरोधमें

"किमित्यपास्या भरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्द्धक शोभि वल्कलम्।
वद प्रदोषे स्फुट चन्द्र तारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥"

—कुमारसंभव।

यह सभीको अवगत है कि किसी समय सप्तग्राम महासमृद्ध-शालिनी नगरी थी। रोम नगरसे यवद्वीपतकके सारे व्यवसायी इस महानगरी एकत्रित होते थे। लेकिन वंगीय दशम-एकादश शताब्दीमें इस नगरीकी समृद्धितामें लघुता आयी। इसका प्रधान कारण यही था कि उस समय इस महानगरीके पादतलको धोती हुई जो नदी बहती थी, वह क्रमशः सूखने और पतली पड़ने लगी। अतः बड़े-बड़े व्यापारी जहाज इस सँकरी राहसे दूर ही रहने लगे इस तरह यहाँका व्यवसाय प्रायः लुप्त होने लगा। वाणिज्य-प्रधान नगरोंका यदि व्यवसाय चला गया, तो सब चला गया। सप्तग्रामका सब कुछ गया। वंगीय एकादश शताब्दीमें इसकी प्रतियोगितामें हुगली नदी बनकर खड़ी हो गयी। वहाँ पोर्तगीज लोगोंने व्यापार प्रारम्भ कर दिया। सप्तग्रामकी धन-लक्ष्मी यद्यपि आकर्षित होने लगी, फिर भी सप्तग्राम एकबारगी हतश्री हो न सका। तबतक वहाँ फौजदार आदि राज-अधिकारियोंका निवास था। लेकिन नगरीका अधिकांश भाग बस्तीहीन होकर गाँवका रूप धारण करने लगा।

सप्तग्रामके एक निर्जन उपनगर भागमें नवकुमारका निवास

था। इस समय सप्तग्रामकी गिरी हुई दशाके कारण अधिक आदमियोंका आगमन न होता था। राजपथ लता-गुल्मादिसे आच्छादित हो रहे थे। नवकुमारके घरके पीछे एक विस्तृत घना जङ्गल है। घरके सामने कोई आध कोसकी दूरीपर एक नहर बहती है, जो वनको घेरती हुई पिछवाड़ेके जङ्गलमें से बही है। मकान साधारण ईंटोंका बना हुआ पक्का है। है तो दो-मञ्जिला, किन्तु आज-कलके एक खण्डके मकानोंकी जैसी ऊँचाई उसकी है।

इसी घरकी ऊपरी छतपर दो युवतियाँ खड़ी हो चारों तरफ देख रही हैं। संध्याका समय है। चारों तरफ जो कुछ दिखाई पड़ता है, अवश्य ही वह नयन मोहक है। पासमें ही एक तरफ घना जङ्गल है, जिसमें विविध प्रकारके पक्षी झुण्डके झुण्ड बैठे कलरव कर रहे हैं। एक तरफ वह नहर, मानों रूपहली रेखाकी तरह बल खाती चली गयी है। दूसरी तरफ नगरकी विस्तृत अट्टालिकाएँ अपना सर ऊँचा किये मानों कह रही हैं कि वसन्त-प्रिय-मधुर सौन्दर्य प्रियजनोंका यहाँ निवास है। एक तरफ बहुत दूर नावोंसे सजी हुई भागीरथीकी धारा है, जिसके विशाल वक्षः स्थलपर सांध्यतिमिरका आवरण धीरे-धीरे गाढ़ा हो रहा है।

वे जो दो नवीना मकानके ऊपर खड़ी हैं, उनमें एक चन्द्र-रश्मि-वर्णवाली, अविन्यस्त केशराशिके अन्दर आधी छिपी हुई है; दूसरी कृष्णांगी है। वह सुमुखी षोडशी है। उसका जैसा नाटा कद है, वैसे ही बाल चेहरा भी छोटा है, उसके ऊपरी हिस्सेके चारों तरफसे घुँघराले बाल लटक रहे हैं। नेत्र अच्छे बड़े, कोमल, सफेद मानों बन्द कलीके सदृश हैं; छोटी-छोटी उँगलियाँ साथिनोके केशोंको सुलझाती हुई घूम रही हैं। पाठक महाशय समझ गये होंगे कि वह चन्द्ररश्मि-वर्णवाली और कोई नहीं, कपालकुण्डला है; दूसरी कृष्णांगी उसकी ननद श्यामासुन्दरी है।

श्यामासुन्दरी अपनी भाभीको 'बहू', कभी आदर पूर्वक 'बहन', कभी 'मृणा' नामसे सम्बोधित कर रही थी। कपालकुंडला नाम विकट होनेके कारण घरके लोगोंने उसका नाम 'मृणमयी' रखा है; इसीलिये संक्षिप्त नामसे 'मृणा' कहकर बुलाती है। हमलोग भी कभी-कभी कपालकुंडलाको मृणमयी नामसे पुकारेंगे।

श्यामासुन्दरी अपने बचपनकी याद की हुई एक कविता पढ़ रही थी—

'–बोले—पद्मरानी, बदनखानी, रेते राखे ढेके।
फूटाय कलि छुटाय अलि प्राण पतिके देखे॥
आबार-बनेरलता, छड़िये पाता, गाछेर दिके धाय।
नदीर जल, नामले टल, सागरते जाय॥
छि-छि-सरम टूटे, कुमुद फूटे चादर आलो देले।
बियेर कने राखते नारी फूलशय्या गेले॥
मरि एक ज्वाला विधिर खेला, हरिबे विषाद।
बरदरशे भाई रसे, भाङ्गे लाजेर बाँज॥

'क्यों भाभी! तुम तपस्विनी ही रहोगी?'

मृण्मयीने उत्तर दिया,—"क्यों, क्या तपस्या कर रही हूँ?"

श्यामासुन्दरीने अपने दोनों हाथोंसे केशतरंगमालाको उठाकर कहा,—"तुम अपने इन खुले बालोंकी चोटी नहीं करोगी?"

मृणमयीने केवल मुस्कराकर श्यामासुन्दरीके हाथसे बालोंको हटा लिया।

श्यामासुन्दरीने फिर कहा,—"अच्छा, मेरी साध तो पूरी कर दो। एक बार हम गृहस्थोंके घरकी औरतोंकी तरह शृङ्गार कर लो। आखिर कितने दिनोंतक योगिनी रहोगी?"

मृ०—जब इन ब्राह्मण सन्तानके साथ मुलाकात नहीं हुई थी, तो उस समय भी तो मैं योगिनी ही थी।

श्यामा०—अब ऐसे न रहने पाओगी।

मृ०—क्यों न रहने पाऊँगी ?

श्या०—क्यों ? देखोगी ? तुम्हारे योगको तोड़ दूँगी। पारस पत्थर किसे कहते हैं जानती हो ?

मृण्मयीने कहा,—"नहीं।"

श्यामा०—पारस पत्थरके स्पर्शसे राँगा भी सोना हो जाता है।

मृ०—तो इससे क्या !

श्या०—औरतोंके पास भी पारस पत्थर होता है।

मृ०—वह क्या ?

श्या०—पुरुष ! पुरुषकी हवासे योगिनी भी गृहिणी हो जाती है। तूने उसी पारस-पत्थरको छुआ है ! देखना—

बांधाबो चूलेर राश, पराबो चिकन वास,
खोपाय दोलाबो तोर फूल।
कपाले सींथिर धार, काँकालेते चन्द्रहार,
काने तोर दिबो जोड़ा दूल॥
कुङ्कुम चन्दन चूया, बाटा भेरे पाया गुया,
राङ्गामुख राङ्गा हबे रागे।
सोनार पुतली छेले, कोले तोर दिबो फेले,
देखी भालो लागे कि ना लागे॥

मृण्मयीने कहा—ठीक, समझ गयी। समझ लो कि पारस पत्थर मैं छू चुकी और सोना हो गयी। चोटी भी कर ली, गलेमें चन्द्रहार पहन लिया, चन्दन, कुंकुम, चोआ, पान, इत्र सब ले लिया, सोनेकी पुतली तक हो गयी। समझ लो, यह सब हो गया। लेकिन इतना सब होनेसे क्या सुख हुआ !

श्यामा०—तो बताओ न कि फूलके खिलनेसे क्या सुख है ?

मृ०—लोगोंको देखनेका सुख है, लेकिन फूलका क्या ?

श्यामासुन्दरीके मुखकी कांति गम्भीर हो गयी। प्रभातकालीन वायुके स्पर्शसे कुमुदिनीकी तरह आँखें नाच उठीं। बोली—फूलका क्या, यह तो बता नहीं सकती। कभी फूल बन कर खिली नहीं लेकिन तुम्हारी तरह कली होती तो खिलकर अवश्य दुःखका अनुभव करती।

श्यामा कुलीन पत्नी है।

हम भी इस अवकाशमें पाठकोंको बता देना चाहते हैं कि फूलको खिलनेमें ही सुख होता है। पुष्परस, पुष्पगन्ध वितरित करनेमें ही फूलका सुख है। आदान-प्रदान ही पृथ्वीके सुखका मूल है; तीसरा और कोई मूल नहीं। मृण्मयी वनमें रहकर कभी इस बातको हृदयंगम कर नहीं सकी; अतएव इस बातका उसने कोई जवाब न दिया।

श्यामा सुन्दरीने उसे नीरव देखकर कहा—अच्छा यदि यह न हुआ तो बताओ तो भला, तुम्हें क्या सुख है?

कुछ देर सोचकर मृण्मयीने कहा—बता नहीं सकती। शायद वही समुद्रके किनारे वन-वनमें घूमनेसे ही मुझे सुख है।

श्यामा सुन्दरी कुछ आश्चर्यमें आई। उन लोगोंके यत्नसे मृण्मयी जरा भी उपकृता नहीं हुई, इस ख्यालसे कुछ क्षुब्ध भी हुई। कुछ नाराज भी हुई। बोली—अब लौट जानेका कोई उपाय है?

मृ०—कोई उपाय नहीं।

श्यामा०—तो अब क्या करोगी?

मृ०—अधिकारी कहा करते थे-यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।

श्यामा सुन्दरीने मुँहपर कपड़ा रखकर हँसकर कहा—बहुत ठीक महामहोपाध्याय महाशय! क्या हुआ?

मृण्मयीने एक ठण्ढी साँस लेकर कहा—जो विधाता करेंगे, वही होगा। जो भाग्यमें बदा है, वही भोगना होगा!

श्यामा०—क्यों, भाग्यमें क्या है ? भाग्यमें सुख है। तुम ठंढी साँस क्यों लेती हो ?

मृणमयीने कहा--सुनो ! जिस दिन स्वामीके साथ यात्रा की, यात्राके समय भवानीके पैरपर बेल-पत्ती चढ़ाने गयी। मैं बिना माताके पैरपर बेल-पत्र चढ़ाये कोई काम नहीं करती थी। कार्य यदि शुभजनक होता, तो माता अपने पैरसे पत्र गिराती नहीं थी। यदि अमंगलका डर होता है तो माताके पैरसे वह बेलपत्र गिर पड़ता है। अपरिचित व्यक्तिके साथ विदेश जाते शंका मालूम हुई। शुभाशुभ जाननेके लिए ही मैं यात्राके समय गयी। लेकिन माताने त्रिपत्र धारण नहीं किया, अतएव भाग्यमें क्या है, नहीं कह सकती।

मृणमयी चुप हो गयी। श्यामा सुन्दरी सिहर उठी।

तृतीय खण्ड

भूतपूर्वमें

"कष्टोऽयं खलु मृत्यु भावः"

कपालकुण्डलाको लेकर नवकुमारने जब सरायसे घरकी यात्रा की तो मोती बीबीने वर्द्धमानकी तरफ यात्रा की। जबतक मोती बीबी अपनी राह तय करें, तबतक हम उनका कुछ वृत्तान्त कह डालें। मोती बीबीका चरित्र जैसा महापातकसे भरा हुआ है, वैसे ही अनेक तरहसे सुशोभित है। ऐसे चरित्रका विस्तृत वृत्तान्त पढ़नेमें पाठकोंको अरुचि न होगी।

जब इनके पिताने हिन्दू-धर्म बदलकर मुस्लिम धर्म ग्रहण किया, तो उस समय इनका हिन्दू नाम बदलकर लुत्फुन्निसा पड़ा। मोती बीबी इनका नाम कभी नहीं था। फिर भी छिपे वेशमें देश-विदेश भ्रमणके समय यह कभी-कभी नाम पड़ जाता है। इनके पिता ढाकामें आकर राजकार्यमें नियुक्त हुए। लेकिन वहाँ अनेक स्वदेशीय लोगोंका आना-जाना हुआ करता था। अपने देशमें जान-पहचानवालोंके सामने विधर्मी होकर रहना भला जान नहीं पड़ता। अतएव वह कुछ दिनोंमें अच्छी ख्याति लाभ कर अपने मित्र अनेक उमरा लोगोंसे पत्र लेकर सपरिवार आगरे चले गये। अकबर बादशाहके सामने किसी-का गुण छिपा नहीं रहता था। शीघ्र ही इन्होंने अपने गुण

प्रकट किये। इसके फलसे वह आगरेके उमरा लोगोंमें गिने जाने लगे। इधर लुत्फुन्निसा भी यौवनमें पदार्पण करने लगी। आगरेमें आकर इन्होंने फारसी, संस्कृत, नृत्यगीत, रसवादन आदिमें अच्छी शिक्षा ग्रहण कर ली। राजधानीकी सुन्दरियों और गुणवतियोंमें यह अग्रगण्य बनने लगीं। दुर्भाग्यवश लुत्फुन्निसाके पूर्ण युवती होनेपर जान पड़ा कि उसकी मनोवृत्ति दुर्दमनीय और भयानक है। इन्द्रियदमनकी न तो इच्छा थी और न क्षमता ही थी। सद् और असद् में समान प्रवृत्ति थी। यह कार्य अच्छा है और यह बुरा, ऐसा सोच कभी उसने कार्य नहीं किया। जो अच्छा लगता था, वही काम करती थी। जब सत् कर्मसे अन्तःकरण सुखी होता, तो वह करती और असत्कर्मके समय भी वही करती। यौवनकालकी दुर्दमनीय मनोवृत्तिके अनुकूल ही लुत्फुन्निसा भी बन गयी। उसके पूर्वपति वर्त्तमान हैं; उमरा लोगों में किसीने उसके साथ शादी न की। वह भी शादी की लालायित न रही। मन ही मन सोचा, फूल-फूलपर घूमनेवाली भ्रमरीको एक का बनाकर बाँध क्यों दूँ! पहले कानाफूसी हुई, इसके बाद मुँह पर कलंककी कालिमा लग गयी। उसके पिताने विरक्त होकर उसे घरसे निकाल दिया।

लुत्फुन्निसा गुप्त रूपसे जिन्हें कृपा-वितरण करती रही, उनमें युवराज सलीम भी एक थे। एक उमराके कुलके कलंकका कारण होनेपर पीछे बादशाहका कोपभाजन न बनना पड़े, इस कारण खुलकर सलीमशाहने लुत्फुन्निसाको अपने महलमें नहीं रखा। अब सुयोग मिल गया। राजपूतपति मानसिंहकी बहन सलीमकी प्रधान महिषी हुई। युवराजने लुत्फुन्निसाको अपनी महिषीकी प्रधान अनुचरी बना दिया। लुत्फुन्निसा बेगमकी सखी बन गयी और परोक्ष रूपसे युवराजकी अनुग्रह-भागिनी हुई।

लुत्फुन्निसा जैसी बुद्धिमती महिला शीघ्र ही युवराजके हृदय पर अधिकार कर लेगी, यह सहज अनुमेय है। सलीमके हृदयपर उसका अधिकार इस तरह प्रतियोगीशून्य हो गया कि लुत्फुन्निसा ने प्रण कर लिया कि वह इनकी पटरानी होकर रहेगी। केवल लुत्फु-न्निसाकी ही ऐसी प्रतिज्ञा हुई, यह बात नहीं, बल्कि इसका विश्वास महल भरमें हो गया। ऐसी ही आशामय स्वप्नमें लुत्फुन्निसाका जीवन पतिमें लगा। लेकिन इसी समय उसकी नींद टूटी। अकबर बादशाहके कोषाध्यक्ष ख्वाजा अब्बासकी कन्या मेहरुन्निसा यवनकुलकी प्रधान सुन्दरी निकली। एक दिन कोषाध्यक्ष ने युवराज सलीम और अन्य उमराको निमंत्रण देकर घर बुलाया। उसी दिन सलीमकी मुलाकात मेहरके साथ हो गयी। उसी दिन सलीमने भी अपना हृदय मेहरुन्निसा को सौंप दिया। इतिहासप्रेमीमात्र इस घटनाको जानते हैं। इसके बाद मेहरकी शादी शेर अफगनके साथ हो गयी। यह शादी अकबरशाहके षड्यन्त्रका फल थी। यद्यपि सलीमको निरस्त होना पड़ा, लेकिन उन्होंने आशाका त्याग न किया। सलीमकी चित्तवृत्ति लुत्फुन्निसा के नखदर्पणवत् थी। वह समझ गयी कि शेर अफगनके जीवनकी खैरियत नहीं और सलीमकी महिषी मेहर ही होगी। लुत्फुन्निसाने सिंहासनकी आशा त्याग दी।

विचक्षण मुगल-सम्राट् अकबरकी परमायु पूरी हुई। जिस प्रचण्ड सूर्यकी प्रभा तुर्कीसे लेकर ब्रह्मपुत्र तक प्रदीप्त थी, उस सूर्य का अस्त हुआ। इस समय लुत्फुन्निसाने आत्मप्राधान्यकी रक्षाके लिये एक दुःसाहसिक संकल्प किया।

राजपूत राजा मानसिंहकी बहन सलीमकी प्रधान महिषी थी। खुसरू उनके पुत्र हैं। एक दिन उनके साथ अकबर बादशाहकी बीमारीकी बात चल रही थी जिस सम्बन्धमें शीघ्र ही बादशाहकी

महिषी बननेकी बधाई लुत्फुन्निसा दे रही थी; प्रत्युत्तरमें खुसुरूकी जननी ने कहा—"बादशाहकी प्रधान महिषी होने से मनुष्य जन्म सार्थक अवश्य होता है, लेकिन सर्वश्रेष्ठता उसकी है जिसका पुत्र बादशाह हो और वह बादशाहजननी बने" यह उत्तर सुनते ही लुत्फुन्निसाके हृदयमें एक चिन्तनीय अभिसन्धिका उदय हुआ। उसने उत्तर दिया— "तो ऐसा ही क्यों न हो! वह भी आपके ही इच्छाधीन है।" बेगमने पूछा—"यह कैसे?" चतुराने उत्तर दिया—"युवराज खुसरूको ही सिंहासनपर बिठाइये।"

इस बातका बेगमने कोई जवाब न दिया। उस दिन फिर यह प्रसङ्ग न उठा। लेकिन यह बात किसीको भूली नहीं। स्वामीके बदले पुत्र राज्यसिंहासनपर आसीन हो, यह बेगमकी इच्छा अवश्य है, लेकिन मेहरुन्निसाके प्रति सलीमका प्रेम जैसे लुत्फुन्निसाके हृदयमें काँटेकी तरह खटकता है, वैसे ही बेगमके हृदयमें भी खटकता है। मानसिंहकी बहन एक तुर्कमानकी कन्या की आज्ञानुवर्तिनी होकर कैसे रह सकती है? लुत्फुन्निसाका भी इस विषयमें गहरा तात्पर्य था। दूसरे दिन फिर यह प्रसङ्ग उत्थापित हुआ। दोनोंका एक अभिमत स्थिर हुआ।

सलीमको त्यागकर खुसरूको सिंहासनपर बैठाना कोई असम्भव बात न थी। इस बातको लुत्फुन्निसाने बेगमको अच्छी तरह समझा दिया। उसने पूछा,—"मुगल साम्राज्य राजपूतोंके बाहुबलपर स्थापित हुआ है और आज भी निर्भर करता है। वही राजपूत कुल-तिलक मानसिंह खुसरूके मामा हैं और प्रधान राजमंत्री खान आजम खुसरूके श्वसुर हैं, इन दोनों आदमियोंके खड़े होनेपर कौन इनकी आज्ञा न मानेगा? फिर किसके बलपर युवराज सिंहासनपर अधिकार कर सकते हैं? राजा मानसिंहको राजी करना आपके ऊपर है। खान आजम और अन्यान्य उमराको

तैयार करना मेरे ऊपर छोड़ दीजिये ! आपके आशीर्वादसे अवश्य कृतकार्य हूँगी; लेकिन एक आशंका है कि कहीं सिंहासनासीन होनेके बाद खुसरू मुझे इन दुराचारियों को....निकाल बाहर न कर दें।"

बेगम सहचरीका अभिप्राय समझ गयी। हँसकर बोलीं,—"तुम आगरेमें जिस उमराकी गृहिणी होना चाहोगी, वह तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा। तुम्हारे पति पंचहजार मंसबदार होंगे।"

लुत्फुन्निसा सन्तुष्ट हुई। यही उसका उद्देश्य था। यदि राज-पुरीमें सामान्य स्त्री होकर रहना हुआ, तो फूलोंपर घूमकर रस लेने वाली भ्रमरी बननेसे क्या फायदा हुआ ! यदि स्वाधीनता ही त्याग करना होता तो बालसखी मेहरुन्निसाकी दासी होनेमें ही क्या हर्ज था ! इससे तो कहीं अधिक गौरवकी बात है कि किसी राजपुरुषके गृहकी गृहस्वामिनी बनकर बैठा जाये !

केवल इसी लोभसे लुत्फुन्निसा इस कार्यमें लिप्त न हुई। सलीम उसकी उपेक्षा कर जो मेहर के पीछे पागल हो रहे हैं, उसका उसे प्रतिशोध भी लेना है !

खान आजम आदि आगरे और दिल्लीके उमरा लुत्फुन्निसाके यथेष्ठ साधित थे। खान आजम अपने दामादके लिये उद्योग करेंगे इसकी भी पूरी आशा थी। वह और अन्यान्य उमरा राजी हो गये। खान आजमने लुत्फुन्निसासे कहा—"मान लो यदि हम लोग कृतकार्य न हुए तो हम लोगोंको अपने बचावकी भी कोई राह निकाल लेनी चाहिए।"

लुत्फुन्निसाने कहा,—"आपकी क्या राय है ?" खानने कहा, कहा—'उड़ीसाके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। केवल उसी जगह मुगलोंका शासन प्रखर नहीं है, उड़ीसाकी सेना हमारे हाथ में रहना आवश्यक है। तुम्हारे भाई उड़ीसाके मंसबदार हैं। मैं

कल प्रचार करूँगा कि वह युद्धमें आहत हुए हैं। तुम उन्हें देखने के बहानेसे कल ही उड़ीसाको यात्रा करो। वहाँका कार्य समाप्त कर तुरत वापस जाओ।'

लुत्फुन्निसा इसपर राजी हो गयी। वह अपना कार्य कर लौटते समय पाठकोंसे मिली है।

: २ :

दूसरी जगह

"जे यारी ते पड़े लोके उठे ताइ धरे।
बारेक निराश होये के कोथाय मरे॥
तूफाने पतित किन्तु छाड़ि बना हाल।
आजि के विफल होलो, होते पारे काल॥

—नवीन तपस्विनी

जिस दिन नवकुमारको बिदा कर मोती बीबी या लुत्फुन्निसाने बर्द्धमानकी यात्राकी, उस दिन वह एकदम बर्द्धमान तक पहुँच न सकी। दूसरी चट्टीमें रह गयी। संध्याके समय पेशमन्के साथ बैठकर बातें होने लगीं। ऐसे समय सहसा मोती बीबीने पेशमन्से पूछा,—"पेशमन्! मेरे पतिको देखा, कैसे थे?"

पेशमन्ने कुछ विस्मित होकर कहा,—"इसके क्या माने?"

मोती बोली,—"सुन्दर थे या नहीं?"

नवकुमारके प्रति पेशमन्को विशेष विराग हो गया था। जिन अलङ्कारोंको मोती ने कपालकुण्डलाको दे दिया उनके प्रति पेशमन्

का विशेष लोभ था। मन-ही मन उसने सोच रखा था, कि एक दिन माँग लूँगी। उस बेचारीकी वह आशा निर्मूल हो गयी। अतः कपालकुण्डला और उसके पति दोनोंके प्रति उसे जलन थी। अतएव स्वामिनीके प्रश्नपर उसने उत्तर दिया—'दरिद्र ब्राह्मणकी सुन्दरता और कुरूपता क्या है ?''

सहचरीके मनका भाव समझकर मोतीने हँसकर कहा—दरिद्र ब्राह्मण यदि उमरा हो जाये, तो सुन्दर होगा या नहीं ?''

पे०—इसके क्या मानी ?

मोती—क्यों, क्या तुमने यह नहीं सुना है कि बेगमके कहनेके अनुसार यदि खुसरू बादशाह हो गये तो मेरा पति उमरा होगा ?

पे०—यह तो जानती हूँ, लेकिन तुम्हरा पूर्व पति उमरा कैसे होगा ?

मोती—तो हमारे और पति कौन हैं ?

पे०—जो नये होंगे।

मोतीने मुस्कराकर कहा—"मेरी जैसी सतीके दो पति, यह बड़े अन्याय की बात होगी। हाँ, यह कौन जा रहा है ?''

जिसे देखकर मोतीने कहा कि यह कौन जा रहा है, उसे पेशमन् तुरत पहचान गयी। वह आगरेका रहनेवाला खान आजमका आदमी था। दोनों ही न्यस्त हो पड़ीं। पेशमन्ने उसे बुलाया। उस व्यक्तिने आकर लुत्फुन्निसाको कोर्निश कर पत्र दिया; बोला—"खत लेकर उड़ीसा जा रहा था। बहुत ही जरूरी खत है।''

पत्र पढ़ते ही मोती बीबीकी सारी आशालतापर तुषारपात हो गया। पत्रका मर्म इस प्रकार थाः—

"हमलोगोंका यत्न विफल हो गया। मरते दम तक बादशाह अकबर हमलोगोंको बुद्धिबलसे परास्त कर गये। उनका परलोकवास हो गया। उनकी आज्ञाके बलसे युवराज सलीम अब जहाँ-

गीरशाह हो गये। अब तुम खुसरूके लिए व्यस्त न होना। इस उपलक्ष्यमें कोई तुम्हारी शत्रुता न करे, इस चेष्टाके लिये तुरन्त आगरा आ जाओ।"

अकबर बादशाहने किस तरह इस षड्यन्त्रको विफल किया, यह इतिहासमें अच्छी तरह वर्णित है। इस तरह उसके विस्तारकी आवश्यकता नहीं।

पुरस्कार देकर दूतको विदा करनेके बाद मोतीने वह पत्र पेशमन् को पढ़कर सुनाया। पेशमनने सुनकर कहा—"अब उपाय?"

पे०—(थोड़ा सोचकर) अच्छा, हर्ज ही क्या है? जैसी थी, वैसे ही रहोगी। मुगल बादशाहकी परस्त्रीमात्र ही किसी दूसरे राज्यकी पटरानीकी अपेक्षा भी बड़ी है।

मोती—(मुस्कराकर) यह हो नहीं सकता। अब उस राजमहलमें मैं रह नहीं सकती। शीघ्र ही मेहरके साथ जहाँगीरकी शादी होगी। मेहरुन्निसाको मैं बचपनसे अच्छी तरह जानती हूँ। एक बारके पुरवासिनी हो जानेपर वही बादशाहत करेगी। जहाँगीर तो नाममात्रके बादशाह रहेंगे। मैंने उनके सिंहासनकी राहमें बाधा उपस्थित की थी, यह उनसे छिपा न रहेगा। उस समय मेरी क्या दशा होगी?

पेशमनने प्रायः रुआंसी होकर कहा—"तो अब क्या?"

मोतीने कहा,—"एक भरोसा है। मेहरुन्निसाका चित्त जहाँगीरके प्रति कैसा है? वह जैसी तेजस्विनी है, यदि वह जहाँगीरके प्रति अनुरागिनी न होकर वस्तुतः शेर अफगनसे प्रेम करती होगी, एक नहीं सौ शेर अफगनके मरवाये जानेपर भी मेहर कभी जहाँगीरसे शादी न करेगी। और यदि सचमुच मेहर भी जहाँगीरकी अनुरानिगी हो, तो फिर कोई भरोसा नहीं है।"

पे०—मेहरुन्निसाका हृदय कैसे पहचान सकोगी?

मोतीने हँसकर कहा,—"लुत्फुन्निसा क्या नहीं कर सकती! मेहर मेरी बचपनकी सखी है—कल ही बर्द्धमान जाकर दो दिन उसकी अतिथि बनकर रहूँगी।"

पे०—यदि मेहरुन्निसा बादशाहकी अनुरागिनी न हो तो क्या करोगी?

मो०—पिताजी कहा करते थे,—"क्षेत्रे कर्म विधीयते।"

दोनों कुछ देर चुप हो रहीं। हलकी मुस्कराहटसे मोती बीबीके होठ खिल रहे थे। पेशमनने फिर पूछा,—"हँसती क्यों हो?"

मोतीने कहा,—"एक खयाल मनमें आ गया।"

पे०—"कैसा खयाल?"

मोतीने यह पेशमनको न बताया। हम भी उसे पाठकोंको न बतायेंगे। बादमें प्रकट करेंगे।

: ३ :

प्रतियोगिनीके घर

"श्यामादन्या न हि न हि प्राणनाथा ममास्ति।"

—उद्धवदूत।

शेर अफगन इस समय बंगालकी सूबेदारीमें बर्द्धमानमें रहते थे; मोती बीबी बर्द्धमानमें आकर शेर अफगनके महलमें उतरीं। शेर अफगनने सपरिवार उसकी अभ्यर्थना कर बड़े आदरके साथ आतिथ्य किया। जब शेर अफगन और उसकी स्त्री मेहरुन्निसा आगरेमें रहते थे तो उनका मोती बीबीसे काफी परिचय था! मेहरुन्निसासे तो वास्तवमें प्रेम था; दोनों बाल्यसखी थीं; बादमें

दोनों ही साम्राज्यलाभके लिए प्रतियोगिनी हुईं। इस समय दोनों-के एकत्र होनेपर उनमें एक मेहरुन्निसा अपने मनमें सोच रही थी—"भारतवर्षका कर्त्तव्य विधाताने किसके भाग्यमें लिखा है? विधाता जानते हैं, सलीमशाह जानते हैं, और तीसरा यदि कोई जानता होगा, तो लुत्फुन्निसा जानती होगी। देखें, लुत्फुन्निसा इस बारेमें कुछ बताती है या नहीं!" इधर मोती बीबी भी मेहरका हृदय टटोलना चाहती हैं।

मेहरुन्निसाने उस समय समूचे हिन्दुस्तानमें प्रधान रूपवती और गुणवतीके रूपमें ख्याति प्राप्त की थी। वास्तवमें संसारमें वैसी कम स्त्रियोंने जन्म लिया था। सौंदर्यका वर्णन करनेवाले इतिहास-कारोंने अपने इतिहासमें उसे अद्वितीय सुन्दरी बताया है। उस समयकी विद्यामें कितने ही पुरुष उस समय उसकी बराबरी नहीं कर सकते थे। नृत्य-गीतमें मेहर अद्वितीय थी; कविता-रचना या तूलिका-कलामें वह लोगोंको मुग्ध कर देती थी। उसकी सरस वार्ता उसके सौंदर्यसे भी अधिक मोहक थी। मोती बीबी भी इन सब गुणोंमें न्यून न थी। आज ये दोनों ही चमत्कारिणी प्रति-योगिनियाँ एक दूसरेके मनकी थाह लेनेके लिए बैठी हैं।

मेहरुन्निसा खास कमरेमें बैठी तस्वीर बना रही थी। मोती मेहरकी पीठकी तरफ बैठी तस्वीर देख रही थी और पान चबा रही थी। मेहरुन्निसाने पूछा—"तस्वीर कैसी हो रही है?" मोती बीबीने उत्तर दिया—"तुम्हारे हाथकी तस्वीर जैसी होनी चाहिए वैसी ही हो रही है! दुःख यही है कि कोई तुम्हारी बराबरीका कलाकार नहीं है।"

मेह०—"अगर यही बात हो, तो इसमें दुःख किस बातका है?"

मोती—"तुम्हारी बराबरीका यदि कोई होता, तो तुम्हारे इस चेहरेका आदर्श रख सकता।"

मेह०—"क़ब्रकी मिट्टीमें चेहरेका आदर्श रहेगा !"

मोती—"बहन ! आज हृदयकी हास्यप्रियतामें इतनी कमी क्यों है ?"

मेह०—"नहीं, प्रसन्नतामें कमी तो नहीं है । फिर भी, कल सबेरे ही जो तुम मुझे त्यागकर चली जाओगी, इसको कैसे भूल सकती हूँ ! और दो दिन रहकर तुम मुझे कृतार्थ क्यों नहीं किया चाहती ?"

मोती—"सुखकी किसे इच्छा नहीं होती ? यदि वश चलता तो मैं क्यों जाती ? लेकिन क्या करूँ, पराधीन हूँ ।"

मेह०—"मुझपर अब तुम्हारा वह प्रेम नहीं । यदि रहता, तो तुम अवश्य रह जातीं । आई हो, तो रह क्यों नहीं सकती ?"

मोती—"मैं तो तुमसे सब कह चुकी हूँ । मेरा छोटा भाई मुगल सैन्यमें मंसबदार है । वह उड़ीसाके पठानोंके युद्धमें आहत होकर संकटमें पड़ गया था । मैं उसकी ही विपद्की खबर पाकर बेगमसे छुट्टी लेकर आयी थी । उड़ीसामें बहुत दिन लग गये, अब अधिक देर करना उचित नहीं । तुमसे बहुत दिनोंसे मुलाकात हुई न थी, इसलिए यहाँ दो दिन ठहर गयी ।"

मेह०—"बेगमके पास किस दिन पहुँचना स्वीकार कर आई हो ?"

मोती बीबी समझ गयी कि मेहर व्यंग कर रही है । मार्मिक व्यङ्ग करनेमें मेहर जैसी निपुण है, वैसी मोती नहीं । लेकिन वह अप्रतिभ होनेवाली भी नहीं है उसने उत्तर दिया–'भला' तीन महीने की यात्रामें दिन भी निश्चित कर बताया जा सकता है ? लेकिन बहुत दिनों तक विलम्ब कर चुकी; और अधिक विलम्ब असन्तोषका कारण बन सकता है ।'

मेहरने अपनी लोकमोहिनी हँसीसे हँसकर कहा—"किसके

असन्तोषकी आशंका कर रही हो ? युवराजकी या उनकी महिषी की ?"

मोती बीबीने थोड़ा अप्रतिभ होकर कहा—"इस लज्जाहीनाको क्यों लजाती हो ? दोनोंको असन्तोष हो सकता है।"

मेह०—"लेकिन मैं पूछती हूँ–तुम स्वयं बेगम नाम क्यों धारण नहीं करतीं ? सुना था ? कुमार सलीम तुम्हारे साथ शादी कर तुम्हें अपनी बेगम बनाना चाहते हैं। उसमें क्या देर है ?"

मो०—"मैं स्वभावकी स्वाधीन ठहरी। जो कुछ स्वाधीनता है उसे क्यों नष्ट करूँ ? बेगमकी सहचारिणी होकर आसानीसे उड़ीसा भी आ सकी, सलीमकी बेगम होकर क्या इस तरह आ सकती ?"

मे०—"जो दिल्लीश्वरकी प्रधान महिषी होगी, उसे उड़ीसा आनेकी जरूरत ?"

मो०—"सलीमकी प्रधान महिषी हूँगी, ऐसी स्पर्द्धा तो मैंने कभी नहीं की। इस हिन्दोस्तानमें दिल्लीश्वरकी प्राणेश्वरी होने लायक तो एक मेहरुन्निसा ही है।"

मेहरुन्निसाने सर नीचा कर लिया। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद बोली—"बहन ! मैं नहीं जानती कि वह बात तुमने मुझे दुःख पहुँचानेके लिये कही, या मेरी थाह लेनेके लिए। लेकिन तुमसे मेरी भीख है कि मैं शेर अफगनकी बीबी हूँ; हृदयसे उसकी दासी हूँ, भूलकर ऐसी बात न करो।"

निर्लज्जा मोती इस तिरस्कारसे लजाई नहीं वरन उसने और भी सहयोग पाया। बोली—"तुम जैसी पतिगतप्राणा हो, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। इसीलिये तो तुमसे यह बात मैंने कही है। सलीम अभी तक तुम्हारे सौन्दर्यको भूल नहीं सके हैं, मेरे कहनेका यही तात्पर्य है। सावधान रहना।"

मे०—"अब समझी। लेकिन डर किस बात का ?"

मोती बीबीने जरा इधर-उधर करनेके बाद कहा—"वैधव्यकी आशंका।"

यह कहकर मोती मेहरुन्निसाके चेहरेपर एक गहरी निगाह डाल कुछ समझनेकी चेष्टा करने लगी, लेकिन मेहरुन्निसाके चेहरेपर डर या प्रसन्नताके कोई भी लक्षण दिखाई न दिये। मेहरुन्निसा ने बड़े ही घमण्डके साथ कहा—"वैधव्यकी आशंका! शेर अफगन अपनी रक्षा करनेमें कमजोर नहीं है। विशेषतः अकबरके शासनमें उनका लड़का भी बिना दोषके दूसरेका प्राण नष्टकर बच नहीं सकता।"

मोती०—"यह सच है, लेकिन आगरेके ताजे समाचारोंसे मालूम हुआ है कि अकबर बादशाहका अन्तकाल हो चुका है। सलीम सिंहासनारूढ़ हुए हैं। दिल्लीश्वरका दमन कौन कर सकता है?"

मेहरुन्निसा आगे कुछ सुन न सकी। उसका समूचा शरीर सिहर और काँप उठा। उसने फिर अपना सिर नीचा कर लिया। उसकी दोनों आँखोंसे आँसूकी धारा बह गई। मोती बीबीने पूछा—"क्यों रोती हो?"

मेहरुन्निसा एक ठण्ढी साँस खींचकर बोली—"सलीम हिन्दोस्तानके तख्तपर है लेकिन मैं कहाँ हूँ?"

मोती बीबीका मनस्काम सिद्ध हुआ। उसने कहा—"आज भी तुम युवराजको एक क्षणके लिए भी भूली नहीं?"

मेहरुन्निसाने गद्गद स्वरमें कहा—"कैसे भूलूँगी! अपने जीवन को भूल सकती हूँ, लेकिन युवराजको भूल नहीं सकती। लेकिन सुनो बहन! एकाएक हृदयका आवरणपट खुल गया और तुमने सारी बातें जान लीं। लेकिन तुम्हें मेरी कसम है, यह बात दूसरेके कानमें न पहुँचे।"

मोतीने कहा—"अच्छा ऐसा ही होगा। लेकिन सलीम जब यह सुनेंगे कि मैं बर्द्धमान गयी थी, तो वह अवश्य पूछेंगे कि मेहरुन्निसाने मेरे बारेमें क्या कहा, तो मैं उनसे क्या कहूँगी?"

मेहरुन्निसाने कुछ देर सोचकर कहा—"यही कहना कि मेहरु-

न्निसा हृदयमें तुम्हारा ध्यान करेगी । प्रयोजन होनेपर उनके लिए प्राण तक विसर्जन कर सकती है । लेकिन अपना कुल और मान समर्पण नहीं कर सकती । इस दासीका स्वामी जब तक जीवित है, तब तक वह दिल्लीश्वरको मुँह नहीं दिखा सकती और यदि दिल्लीश्वर द्वारा मेरे पतिका प्राणान्त होगा तो इस जन्ममें स्वामीहन्ताके साथ मिलन हो न सकेगा ।"

यह कहकर मेहरुन्निसा अपने स्थानसे उठकर खड़ी हो गयी । मोती बीबी आश्चर्यान्वित होकर रह गई । लेकिन विजय मोती बीबीकी ही हुई । मेहरुन्निसाके हृदयका भाव मोती बीबीने निकाल लिया । मोती बीबीके हृदयकी आशा या निराशाकी छाँह मेहरुन्निसा पा न सकी । जो अपनी विलक्षण बुद्धिसे बादमें दिल्लीश्वर की ईश्वरी हुई, वह बुद्धि-चातुरीमें मोती बीबीके सामने पराजिता हुई । इसका कारण ? मेहरुन्निसा प्रणयशालिनी है और मोती बीबी केवल स्वार्थपरायणा ।

मनुष्य-हृदयकी विचित्र गतिको मोती बीबी खूब पहचान सकती है । मेहरुन्निसाके बारेमें हृदयमें आलोचना कर जिस सिद्धान्तपर वह उपनीत हुई, अन्तमें वही सिद्ध हुआ । वह समझ गई कि मेहरुन्निसा वास्तवमें जहाँगीरकी प्रणयानुरागिनी है; अतएव नारी दर्पवश अभी चाहे जो कहे, कालान्तरमें सुयोग उपस्थित होनेपर वह अपने मनकी गतिको रोक न सकेगी । बादशाह अपनी मनोकामना अवश्य सिद्ध करेंगे ।

इस सिद्धान्तपर उपनीत होकर मोती बीबीकी सारी आशा निर्मूल हो गयी । लेकिन इससे क्या मोती बहुत दुखी हुई ? यह बात नहीं । इसके बदले उसने स्वयं कुछ सुखका अनुभव ही किया । हृदयमें ऐसा भाव क्यों उदित हुआ, मोती स्वयं भी पहले समझ

न सकी। उसने आगरेके लिए यात्रा की; राहमें कितने ही दिन बीते। इन कई दिनोंमें वह अपने चित्तके भावको समझती रही।

★

: ४ :

राज निकेतनमें

"पत्नी भावे आर तुमि भेवो ना आमारे"

—वीराङ्गना काव्य।

मोती बीबी यथा समय आगरे पहुँची। अब इसे मोती कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इन कई दिनोंमें उसकी मनोवृत्ति बहुत कुछ बदल गयी थी। उसकी जहाँगीरके साथ मुलाकात हुई। जहाँगीरने पहलेकी तरह उसका आदर कर उसके भाईका कुशल-संवाद और राहकी कुशल आदि पूछी। लुत्फुन्निसाने जो बात मेहरुन्निसासे कही थी, वह सच हुई। अन्यान्य प्रसङ्गके बाद बर्द्धमानकी बात सुन कर जहाँगीरने पूछा—'कहती हो कि मेहरुन्निसाके पास दो दिन तुम ठहरी, मेहरुन्निसा मेरे बारेमें क्या कहती थी ?" लुत्फुन्निसाने अकपट हृदयसे मेहरुन्निसाके अनुरागकी सारी बातें कह सुनायी। बादशाह सुनकर चुप हो रहे। उनके बड़े-बड़े नेत्रोंमें एक बिन्दु जल आकर ही रह गया।

लुत्फुन्निसाने कहा—"जहाँपनाह ! दासीने शुभ संवाद दिया है। अभी भी दासीको किसी पुरस्कारका आदेश नहीं हुआ।"

बादशाहने हँसकर कहा—"बीबी ! तुम्हारी आकाँक्षा अपरिमित है।"

लु०—"जहाँपनाह ! दासीका कुसूर क्या है ?"

बाद०—"दिल्लीके बादशाहको तुम्हारा गुलाम बना दिया है और फिर भी पुरस्कार चाहती हो!"

लुत्फुन्निसाने हँसकर कहा—"स्त्रियोंकी आकाँक्षा भारी होती है।"

बाद०—"अब और कौन-सी आकांक्षा है?"

लु०—"पहले शाही हुक्म हो कि बाँदीकी अर्जी कुबूल की जायगी।"

बाद०—"अगर हुकूमतमें खलल न पड़े।"

लु०—"एकके लिए दिल्लीश्वरके काममें खलल न पड़ेगा।"

बाद०—तो मंजूर है, बोलो कौन-सी बात है?"

लु०—"इच्छा है, एक शादी करूँगी।"

जहाँगीर ठहाका मारकर हँस पड़े; बोले—"है तो बड़ी भारी चाह। कहीं सगाई ठीक हुई है?"

लु०—"जी हाँ, हुई है। सिर्फ शाही फरमानकी देर है। बिना हुजूरकी इच्छाके कुछ भी न होगा।"

बाद०—"इसमें मेरे हुक्मकी क्या जरूरत है। किस भाग्य-शालीको सुख-सागर में डुबोओगी?"

लु०—"दासीने दिलीश्वरकी सेवा की है, इसलिये द्विचा-रिणी नहीं है। दासी अपने स्वामीके साथ ही शादी करनेका विचार कर रही है।"

बाद०—"सही है, लेकिन इस पुराने नौकरकी क्या दशा होगी?"

लु०—"दिल्लीश्वरी मेहरुन्निसाको सौंप जाऊँगी।"

बाद०—"दिल्लीश्वरी मेहरुन्निसा कौन?"

लु०—"जो होगी।"

जहाँगीर मन-ही-मन समझ गये कि मेहरुन्निसा दिल्लीश्वरी होगी, ऐसा विश्वास लुत्फुन्निसाको हो गया है। अतएव अपनी इच्छ

विफल होनेके कारण राज्य-परिवारसे विरागवश हटनेका अवसर लिया चाहती है।

ऐसा सोचकर जहाँगीर दुःखी होकर चुप रहे। लुत्फुन्निसाने पूछा—"शाहंशाहकी क्या ऐसी मर्जी नहीं है?"

बाद०—"नहीं, मेरी गैरमर्जी नहीं है, लेकिन स्वामीके साथ फिर विवाह करनेकी क्या जरूरत है?"

लु०—"कालक्रमसे प्रथम विवाहमें स्वामीने पत्नी रूपमें ग्रहण किया। अभी जहाँपनाह दासीका त्याग न करेंगे?"

बादशाह मजाकमें हँसकर फिर गम्भीर हो गये।

बोले०—"दिलजान! कोई चीज ऐसी नहीं है, जो मैं तुम्हें न दे सकूँ अगर तुम्हारी ऐसी ही मर्जी है, तो वही करो। लेकिन मुझे त्यागकर क्यों जाती हो? क्या एक ही आसमानमें चाँद और सूरज दोनों नहीं रहते? एक डालीमें दो फूल नहीं खिलते?"

लुत्फुन्निसा आँखें फाड़कर बादशाहको देखती रही। बोली—"हुजूर! छोटे-छोटे फूल जरूर खिलते हैं, लेकिन एक तालमें दो कमल नहीं खिलते। हुजूरके शाही तख्तकी काँटा बनकर क्यों रहूँ?"

इसके बाद लुत्फुन्निसा अपने महलमें चली गयी। उसकी ऐसी इच्छा क्यों हुई, यह उसने जहाँगीरसे नहीं बताया। अनुभव-से जो कुछ समझा जा सकता था, जहाँगीर वही समझकर शान्त हो रहे। भीतरी वास्तविक तथ्य कुछ भी समझ न सके। लुत्फु-न्निसाका हृदय पत्थर है। सलीमकी रमणी हृदयको जीतनेवाली राज्यकान्तिने भी कभी उसका मन मुग्ध न किया; लेकिन इस बार उस पाषाणमें भी कीड़ेने प्रवेश किया है।

★

: ५ :

अपने महलमें

"जनम अवधि हम रूप निहारलु नयन न तिरपित भयल।
सोई मधुर बोल क्षुतहोहिं सुनन श्रुतिपथ परसन गयल।
कत मधुयामिनी रयसे गोंयाइनु न बुझनु कैछन न कयल।
लाख-लाख दुरा हिये-हिये रखिनु तबू हिया जुड़ायन गयल।
यत-यत रसिक जन रसे अनुगमन अनुयत काहू न पेख।
विद्यापति कहे प्राण जुड़ाइतें लाखे ना मिलल एक ॥"

लुत्फुन्निसाने अपने महलमें पहुँच कर पेशमनको बुलाया और प्रसन्न हृदयसे अपनी पोशाक बदली। स्वर्णमुक्तादि खचित वस्त्र उतारकर पेशमन से कहा—"यह पोशाक तुम ले लो।"

सुनकर पेशमन कुछ विस्मयमें आई। पोशाक बहुत ही बेश-कीमती और हालहीमें तैयार हुई थी। बोली—"पोशाक मुझे क्यों देती हो! आज क्या खबर है?"

लुत्फुन्निसा बोली—"शुभ सम्वाद है।"

पे०—"यह तो मैं भी समझ रही हूँ। क्या मेहरुन्निसाका भय दूर हो गया?"

लु०—"दूर हो गया। अब उस बारेमें कोई चिन्ता नहीं है।"

पेशमनने खूब खुशी जाहिर कर कहा—"तो अब मैं बेगमकी दासी हुई?"

लु०—"तुम अगर बेगमकी दासी होना चाहती हो, तो मैं मेहरुन्निसासे सिफारिश कर दूँगी।"

पे०—"हैं यह क्या! आपने ही तो कहा कि मेहरुन्निसाके अब बादशाहकी बेगम होनेकी कोई सम्भावना नहीं है।"

लु०—"मैंने यह बात तो नहीं कही। मैंने कहा था कि इस विषयमें अब मुझे कोई चिन्ता नहीं।"

पे०—"चिन्ता क्यों नहीं है? यदि आप आगरेकी एकमात्र अधीश्वरी न हुई तो सब व्यर्थ है।"

लु०—"आगरासे अब कोई सम्बन्ध न रखूँगी।"

पे०—"हैं! मेरी समझमें कुछ आता ही नहीं। तो वह शुभ संवाद क्या है, समझाकर बताइये न?"

लु०—"शुभ संवाद यही है कि इस जीवनमें आगरेको छोड़-कर अब मैं चली।"

पे०—"कहाँ जायँगी?"

लु०—"बंगालमें जाकर रहूँगी। हो सका तो किसी भले आदमीके घरकी गृहिणी बनकर रहूँगी।"

पे०—"यह व्यङ्ग नया जरूर है, लेकिन सुनकर कलेजा काँप उठता है।"

लु०—"व्यंग नहीं करती, मैं सचमुच आगरा छोड़कर जा रही हूँ। बादशाहसे बिदा ले आयी हूँ।"

पे०—"यह कुप्रवृत्ति आपकी क्यों हुई?"

लु०—"यह कुप्रवृत्ति नहीं है। बहुत दिनों तक आगरेमें रही, क्या नतीजा हुआ? बचपनसे ही सुखकी बड़ी प्यास थी। उसी प्यासको बुझानेके लिए बंगालसे यहाँ तक आई। इस रत्नको खरीदनेके लिए कौन-सा मूल्य मैंने नहीं चुकाया? कौन-सा दुष्कर्म मैंने नहीं किया? और जिस उद्देश्यके लिए यह सब किया, उसमें मैं क्या नहीं पा सकी? ऐश्वर्य, सम्पदा, धन, गौरव, प्रतिष्ठा सबका तो छककर मजा लिया, लेकिन इतना पाकर भी क्या हुआ? आज यहाँ बैठकर हर दिनको गिनकर कह सकती हूँ कि एक दिन-के लिए, एक क्षणके लिए भी सुखी न हो सकी। कभी परितृप्त न

हुई। सिर्फ प्यास दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है। चेष्टा करूँ, तो और भी सम्पदा, और भी ऐश्वर्य लाभ कर सकती हूँ, लेकिन किसलिए ? इन सबमें सुख होता तो क्यों एक दिनके लिए भी सुखी न होती ? यह सुखकी इच्छा पहाड़ी नदीकी तरह है—पहले एक निर्मल पतली धार जंगलसे बाहर होती है, अपने गर्भमें आप ही छिपी रहती है, कोई जानता भी नहीं; अपने ही कल-कल करती है, कोई सुनता भी नहीं, क्रमशः जितना आगे बढ़ती है, उतनी ही बढ़ती है—लेकिन उतनी ही पंकिल होती है। केवल इतना ही नहीं कभी वायुका झकोरा पा लहरें मारती है—उसमें हिंस्र जीवोंका निवास हो जाता है। जब शरीर और बढ़ता है, तो कीचड़ और भी मिलता है—जल गंदला होता है; खारा हो जाता है; असंख्य ऊसर और रेत उसके हृदयमें समा जाता है; वेग मंद पड़ जाता है। इसके बाद वह वृहत् रूप—गंदा रूप-सागरमें जाकर क्यों विलीन हो जाता है, कौन बता सकता है ?"

पे०—"मैं यह सब तो कुछ भी नहीं समझ पाती। लेकिन यह सब तुम्हें अच्छा क्यों नहीं मालूम पड़ता ?"

लु०—"क्यों अच्छा नहीं मालूम पड़ता, यह इतने दिनोंके बाद अब समझ सकी हूँ। तीन वर्षों तक शाही महलकी छायामें बैठकर जो सुख प्राप्त नहीं हुआ, उड़ीसासे लौटनेके समय बादमें एक रातमें वह सुख मिला। इसीसे समझी !"

पे०—"क्या समझी ?"

लु०—"मैं इतने दिनोंतक हिन्दुओंकी देव-मूर्तिकी तरह रही। नाना स्वर्ण और रत्न आदिसे लदी हुई, भीतरसे पत्थर। इन्द्रिय-सुखकी खोजमें आगके बीच घूमती रही, लेकिन अग्निका स्पर्श कभी नहीं किया। अब एक बार देखना है, शायद पत्थरके अन्दरसे कोई रक्तग्राही शिरा हृदयमें मिल जाये।"

पे०—"यह भी तो समझमें नहीं आता।"

लु०—"मैंने इस आगरेमें कभी किसीसे प्रेम किया है?"

पे०—(धीरेसे) "किसीसे भी नहीं।"

लु०—"तो फिर मैं पत्थर नहीं हूँ, तो क्या हूँ?'

पे०—"तो अब प्रेम करनेकी इच्छा है, तो क्यों नहीं करती?"

लु०—"हृदय ही तो है। इसलिए आगरा छोड़ कर जा रही हूँ।"

पे०—इसकी जरूरत ही क्या है? आगरेमें क्या आदमी नहीं हैं, जो दूसरे देशमें जाओगी? अब जो तुमसे प्रेम कर रहे हैं, उन्हें तुम भी प्रेम क्यों नहीं करतीं? रूपमें, धनमें, ऐश्वर्यमें, चाहे जिसमें कहें, इस समय दिल्लीश्वरसे बढ़ कर पृथ्वीपर कौन है!

लु०—"आकाशमें चन्द्र-सूर्यके रहते जल अधोगामी क्यों होता है?"

पे०—"मैं ही पूछती हूँ क्यों?"

लु०—"ललाट लिखन—भाग्य!"

लुत्फुन्निसाने सारी बातें खुल कर न बतायीं।

पाषाणमें अग्निने प्रवेश किया; पाषाण गल रहा था।

★

: ६ :

चरणोंमें

"काय मनः प्राण आमि संदिब तोमारे।
भुञ्ज आसि राजयोग दासीर आलये॥"

—वीराङ्गना काव्य

खेतमें बीज बो देनेसे आप ही उगता है। जब अंकुर पैदा होता है, तो न कोई जान पाता है न देख पाता है। लेकिन एक बार बीजके बो जानेपर बोने वाला चाहे कहीं भी रहे; वह अंकुर बढ़कर वृक्ष बनकर मस्तक ऊँचा करता है। अभी वह वृक्ष केवल एक अंगुल मात्रका है, तो देखकर भी देख नहीं सकता। क्रमशः तिल-तिल बढ़ रहा है। इसके बाद वह वृक्ष आधा हाथ, फिर एक हाथ, दो हाथ तक बढ़ा। फिर भी, उसमें यदि किसीका स्वार्थ न रहा तो उसे देखकर भी ख्याल नहीं करता। दिन बीतता है, महीने बीतते हैं, वर्ष बीतते हैं, इससे ऊपर दृष्टि जाती है। फिर उपेक्षाकी तो बात ही नहीं रहती—क्रमशः वह वृक्ष बड़ा होता है, अपनी छायामें दूसरे वृक्षोंको नष्ट करता है—फिर और चाहिये क्या, खेतमें एक मात्र वही रह जाता है।

लुत्फुन्निसाका प्रणय इसी तरह बढ़ा था। पहले एक दिन अकस्मात् प्रणय-भाजनके साथ मुलाकात हुई, उस समय प्रणय-संचार विशेष रूपसे परिलक्षित न हुआ। लेकिन अंकुर उसी समय आ गया। लेकिन इसके बाद फिर मुलाकात न हुई। लेकिन बिना मुलाकात हुए ही बारम्बार वह चेहरा हृदयमें खिलने लगा, याद-दाश्तमें उस चेहरेकी याद करना सुख कर जान पड़ने लगा, अंकुर बढ़ा। मूर्तिके प्रति फिर अनुराग पैदा हुआ। चित्तका यही धर्म है

कि जो मानसिक कर्म जितनी बार अधिक किया जाये, उस कर्ममें उतनी ही अधिक प्रवृत्ति होती है; वह कर्म क्रमशः स्वभाव सिद्ध हो जाता है; लुत्फुन्निसा उस मूर्तिको रात-दिन याद करने लगी। इससे दारुण दर्शनकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। साथ ही साथ उसकी सहज स्पृहाका प्रवाह भी दुर्निवार्य हो उठा। दिल्लीकी सिंहासनलिप्सा भी उसके आगे तुच्छ जान पड़ी। मानों सिंहासन मन्मथशरजालसम्भूत अग्निशिखासे घिरा हुआ जान पड़ने लगा। राज्य, राजधानी राजसिंहासन सबका विसर्जन कर वह प्रिय-मिलन-के लिए दौड़ पड़ी। वह प्रियजन नवकुमार है।

इसलिए लुत्फुन्निसा मेहरुन्निसाकी आशानाशिनी बात सुन कर भी दुखी हुई न थी। इसलिए आगरे पहुँच कर सम्पद-रक्षाकी भी उसे परवाह नहीं रही, इसीलिए उसने जीवन-पर्यन्तके लिए बादशाह से बिदा ली।

लुत्फुन्निसा सप्तग्राममें आई। राजपथसे निकट ही नगरीके बीचमें एक अट्टालिकामें उसने अपना डेरा डाला। राजपथके पथि-कोंने देखा कि एकाएक वह अट्टालिका जरदोजी और किमखाबकी पोशाकोंसे सजे दास-दासियोंसे भर गई। हर कमरेकी शोभा हरम जैसी निराली थी। सुगन्धित वस्तुएँ, गुलाब, खस, केशर, कपूरादिसे सारा प्रांगण भर गया है। स्वर्ण, रौप्य, हाथीदाँत आदिके सामानोंसे मकान अपूर्व शोभा पाने लगा। ऐसे ही एक सजे हुए कमरेमें लुत्फुन्निसा अधोवदन बैठी हुई है। एक अलग आसन पर नवकुमार बैठे हुए हैं। सप्तग्राममें लुत्फुन्निसासे नव-कुमारकी दो-एक बार और मुलाकात हो चुकी है। इन मुलाकातोंसे लुत्फुन्निसाका मनोरथ कहाँ तक सिद्ध हुआ है, वह इस वार्तासे ही प्रकट होगा।

कुछ देर तक चुप रहनेके बाद नवकुमारने कहा—"अब मैं जाता हूँ। फिर तुम मुझे न बुलाना।"

लुत्फुन्निसा बोली—"नहीं, अभी न जाओ। थोड़ा और ठहरो। मुझे अपना वक्तव्य पूरा कर लेने दो।"

नवकुमारने थोड़ी देर और प्रतीक्षा की, लेकिन लुत्फुन्निसा चुप ही रही। थोड़ी देर बाद नवकुमारने फिर पूछा—"और तुम्हें क्या कहना है?" लुत्फुन्निसाने कोई जवाब न दिया। वह चुप-चाप रो रही थी।

यह देख कर नवकुमार उठ कर खड़े हो गये; लुत्फुन्निसाने उनका वस्त्र पकड़ लिया। नवकुमारने कुछ विरक्त होकर कहा—"क्या कहती हो, कहो न?"

लुत्फुन्निसा बोली—"तुम क्या चाहते हो? क्या पृथ्वीकी कोई भी चीज तुम्हें न चाहिये? धन, सम्पद, मान, प्रणय, राग-रङ्ग, पृथ्वीमें जिन-जिन चीजोंको सुख कह सकते हैं, सबदूँगी, उसके बदलेमें कुछ भी नहीं चाहती; केवल तुम्हारी दासी होना चाहती हूँ। तुम्हारी धर्मपत्नी बननेका गौरव मुझे नहीं चाहिये, सिर्फ दासी बनना चाहती हूँ।"

नवकुमारने कहा—"मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ, इस जन्ममें दरिद्र ब्राह्मण ही रहूँगा। तुम्हारे दिये हुए धन-सम्पदको लेकर यवनी-जार बन नहीं सकता।"

यवनी-जार!—नवकुमार अबतक जान न सके, कि यही रमणी उनकी पत्नी है। लुत्फुन्निसा सर नीचा किये रह गयी। नवकुमारने उसके हाथसे अपना कपड़ा छुड़ा लिया। लुत्फुन्निसाने फिर उनका वस्त्र पकड़ कर कहा—"अच्छा, यह भी जाने दो। विधाताकी यदि ऐसी ही इच्छा है, तो सारी चित्तवृत्तिको अतल जलमें समाधि दे दूँगी। और कुछ नहीं चाहती; केवल जब इस राहसे हो कर जाना, दासी जानकर एक बार दर्शन दे दिया करना, केवल आँख ठण्डी कर लिया करूँगी।"

नव०—"तुम मुसलमान हो—परायी औरत हो—तुम्हारे साथ इस तरह बात करनेमें भी मुझे दोष है। अब तुम्हारे साथ मेरी मुलाकात न होगी।"

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। लुत्फुन्निसाके हृदयमें तूफान बह रहा था। वह पत्थरकी मूर्तिकी तरह अचल रही। नवकुमारका वस्त्र उसने छोड़ दिया, बोली—"जाओ।"

नवकुमार चले। जैसे ही वह दो-चार कदम बढ़े थे कि वायु द्वारा उखाड़ कर फेंकी गई लताकी तरह लुत्फुन्निसा एकाएक उनके पैरोंपर आ गिरी। अपनी बाहुलतासे चरणोंको पकड़ बड़े ही कातर स्वरमें उसने कहा—"निर्दय! मैं तुम्हारे लिए आगराका शाही तख्त छोड़कर आई हूँ। तुम मेरा त्याग न करो।"

नवकुमार बोले—"तुम फिर आगरे लौट जाओ। मेरी आशा छोड़ दो।"

"इस जन्ममें नहीं।" तीरकी तरह उठकर खड़ी हो सदर्प लुत्फुन्निसाने कहा—"इस जन्ममें तुम्हारी आशा त्याग नहीं सकती।" मस्तक उन्नत और बहुत हल्की टेढ़ी गर्दन किये, अपने आयत नेत्र नवकुमार पर जमाये वह राजराज-मोहनी खड़ी रही। जो अदमनीय गर्व हृदयाग्निमें लग गया था, उसकी ज्योति फिर छिटकने लगी। जो अजेय मानसिक शक्ति भारत राज्य—शासन की कल्पना से भी डरी नहीं, वह शक्ति फिर उस प्रणय दुर्बल देहमें चौंक पड़ी। ललाट पर नसें फूलकर अपूर्व शोभा देने लगीं, ज्योतिर्मयी आँखें समुद्र जलमें पड़नेवाली रविरश्मिकी तरह झल-झला उठीं। नाक का अग्रभाग उत्तेजनासे काँपने लगा। लहरों पर नाचने वाली राजहंसी गतिरोध करने वाले को जैसे देखती है, दलितफण फणिनी जैसे फन उठाकर ताकती है, वैसे ही वह

उन्मादिनी यवनी अपना मस्तक उन्नत किये देखती रही। बोली —"इस जन्ममें नहीं, तुम मेरे ही होगे।"

उस कुपित फणिनीकी मूर्ति देख कर नवकुमार सहम गये। लुत्फुन्निसाकी अनिवर्चनीय देह महिमा जैसी इस समय दिखाई दी, वैसी देहमें कभी दिखाई न दी थी। लेकिन उस सौन्दर्यको वज्रसूचक विद्युत् की तरह मनोमोहिनी देखकर भय हुआ। नवकुमार जाना ही चाहते थे, लेकिन सहसा उन्हें एक और मूर्तिका ख्याल हो आया। एक दिन नवकुमार अपनी प्रथम पत्नी पद्मावती के प्रति विरक्त होकर उसे अपने कमरे से निकालने पर उद्यत हुए थे। द्वादशवर्षीया बालिका उस समय जिस दर्पसे मुड़कर उनकी तरफ खड़ी हुई थी, ठीक उसी तरह उसके नेत्र चमक उठे थे, ललाट पर ऐसी ही रेखाएँ खिंच गयी थीं, नासारंध्र इसी प्रकार काँपे थे। बहुत दीनोंसे उस मूर्तिका ख्याल आया न था। ऐसा ही सादृश्य अनुभूत हुआ। संशयहीन होकर धीमे स्वर में नवकुमार ने पूछा—"तुम कौन हो?" यवनीकी आँखें और विस्फारित हो गयीं। उसने कहा—"मैं वही हूँ—पद्मावती।"

उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही लुत्फुन्निसा दूसरे कमरे में चली गयी। नवकुमार भी अनमनेसे और शंकित हृदयसे अपने घर लौट आये।

★

: ७ :

उपनगरके किनारे

"I am settled; and bent up.
Each corporal agent to this terrible feat"

Macbeth.

दूसरे कमरेमें जाकर लुत्फुन्निसाने अपना दरवाजा बन्द कर लिया। वह दो दिनोंतक उस कमरेसे बाहर न निकली। इधर दो दिनोंमें उसने अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निश्चय कर लिया। स्थिर होकर वह दृढ़प्रतिज्ञ हुई। सूर्य अस्त होना चाहते थे। उस समय लुत्फुन्निसा पेशमनकी सहायतासे अपना श्रृंगार करने लगी। आश्चर्यकारी वेशभूषा थी! पेशवाज नहीं, पाजामा नहीं, ओढ़नी नहीं; रमणी वेशका कोई चिह्न नहीं था। जैसी वेशभूषा उसने की, उसे शीशेमें देखकर उसने पेशमनसे पूछा,—"क्यों पेशमन! क्या मैं पहचानी जा सकती हूँ?"

पेशमन बोली—"किसकी मजाल है?"

लु०—तो मैं जाती हूँ। मेरे साथ कोई भी न जायगा।

पेशमन कुछ संकुचित होकर बोली—"दासीका कसूर माफ हो तो एक बात पूछूँ?"

लुत्फुन्निसाने पूछा—"क्या?"

पेशमनने पूछा—"आपकी मन्शा क्या है?"

लुत्फुन्निसा बोली—"केवल यही कि कपालकुण्डलाका उसके पतिसे चिरविच्छेद हो जाये इसके बाद वह मेरे होंगे।"

पे०—बीबी! जरा मजेमें विचार कर लीजिए; वह घना जंगल होगा; रात हुआ चाहती है; आप अकेली रहेंगी।

लुत्फुन्निसा इसका कोई जवाब न दे घरसे बाहर हुई। सप्तग्राम में जिस जनहीन उपप्रान्तमें नवकुमार रहते हैं, वह उसी तरफ चली। वहाँ पहुँचते-पहुँचते उसे रात होगयी। नवकुमारके घरके समीप ही एक घना जंगल है; पाठकोंको यह याद रह सकता है। उसीके किनारे पहुँचकर वह एक पेड़के नीचे बैठ गयी। कुछ देर बैठ, वह अपने औत्साहसिक कार्यके बारेमें सोचने लगी। घटना-क्रम अपूर्व रूपमें उसका सहायक हो गया।

लुत्फुन्निसा वहाँ बैठी थी, वहाँसे उसे बराबर उच्चरित होने-वाला कोई कण्ठस्वर सुनाई पड़ा। उसने उठकर चारों तरफ देखा, एक रोशनी जलती दिखाई दी। लुत्फुन्निसाका साहस पुरुषसे भी बढ़कर था। जहाँसे रोशनी आ रही थी, वह उधर ही चली। पहले पेड़की आंड़से देखा, बात क्या है! उसने देखा कि रोशनी यज्ञ-होमकी है और मनुष्य-कंठ मन्त्रोचारण है। मन्त्रमें केवल एक नाम सुन पड़ा। परिचित नाम सुनते ही, लुत्फुन्निसा यज्ञकर्ता-के पास जा बैठी।

इस समय वह वहीं बैठी रही। पाठकोंने बहुत कालसे कपाल-कुण्डलाकी खबर नहीं पायी है। अतः कपालकुण्डलाकी खबर जरूरी है।

★

चौथा खण्ड

: १ :

शयनागार में

"अधिकार बेड़ी भाँगी, एकमम मिनति"

—ब्रजाङ्गना काव्य

लुत्फुन्निसाके आगरा जाने और फिर सप्तग्राम लौटकर आनेमें कोई एक साल हुआ है। कपालकुण्डला एक वर्षसे नवकुमारकी गृहिणी है। जिस दिन प्रदोषकालमें लुत्फुन्निसा जंगल आई उस समय कपालकुंडला कुछ अनमनी-सी अपने शयनागारमें बैठी है। पाठकोंने समुद्रतटवासिनी, आलुलायित केशा और भूषणविहीना जिस कपालकुण्डलाको देखा था, अब वह कपालकुंडला नहीं है। श्यामासुन्दरीकी भविष्यवाणी सत्य हुई है। पारसमणिके स्पर्शसे योगिनी गृहिणी हुई है, इस समय वह सारे रेशम जैसे रूखे लम्बे बाल, जो पीठपर अनियन्त्रित फहराया करते थे अब आपसमें गुँथकर वेणी-रूपमें शोभा पा रहे हैं। वेणीरचनामें भी बहुत कुछ शिल्प-परिपाटी है, केशविन्यासमें सूक्ष्म केशीकार्य श्यामासुन्दरीके विन्यास-कौशलका परिचय दे रहा है। फूलोंको भी छोड़ा नहीं गया है, वे भी वेणीमें चारों तरफ खूबसूरतीके साथ गूँथे हुए हैं। सरपरके बाल भी समान उँचाईमें नहीं, बल्कि मालूम होता है, कि आकुंचनयुक्त कृष्ण तरंग मालाकी तरह शोभित हैं। मुखमंडल

अब केशसमूहसे ढँका नहीं रहता; ज्योतिर्मय होकर शोभा पाता है। केवल कहीं-कहीं पुष्प-गुच्छ लटक रहे हैं और स्वेदविन्दु झलक रहे हैं। वर्ण वही, अर्द्ध-पूर्णशशाङ्क-रश्मिरुचिर। अब दोनों कानोंमें स्वर्ण कुण्डल लहरा रहे हैं; गलेमें नेकलेस हार है। रंगके आगे वह म्लान नहीं है। बल्कि वह इस प्रकार शोभा पा रहे हैं जैसे अर्धचन्द्र-कौमुदी-वसना धारिणीके अङ्गपर वह नैश कुसुमवत शोभित हैं। वह दुग्धश्वेत जैसे शुभ्र वस्त्र पहने हुए है; वह वस्त्र आकाशमण्डलमें खेलनेवाले सफेद बादलोंकी तरह शोभा पा रहे हैं।

यद्यपि वर्ण वही है लेकिन पूर्वापेक्षा कुछ म्लान, जैसे आकाश में कहीं काले मेघ झलक रहे हों। कपालकुण्डला अकेली बैठी न थी। उसकी सखी श्यामासुन्दरी पासमें बैठी हुई है। उन दोनोंमें आपसमें बातें हो रही थीं। उनकी वार्ताका कुछ अंश पाठकोंको सुनना होगा।

कपालकुण्डलाने पूछा—"नन्दोईजी, अभी यहाँ कितने दिन रहेंगे?"

श्यामाने उत्तर दिया—"कल शामको चले जायेंगे। आहा आज रातको भी यही औषधि लाकर रख लेती तो भी उन्हें वश कर मनुष्य जन्म सार्थक कर सकती। कल रातको निकली तो लात-जूता खाया, फिर भला आज रात कैसे निकलूँ?"

क०—दिनको ले आनेसे काम न चलेगा?

श्या०—नहीं, दिनमें तोड़नेसे फल न होगा। ठीक आधी रातको खुले बालोंसे तोड़ना होता है; अरे बहन! क्या कहें, मनकी साध मनमें ही रह गयी।

क०—अच्छा, आज दिनमें तो मैं उस पेड़को पहचान ही आई हूँ; और जिस वनमें है, वह भी जान चुकी हूँ। अब आज तुम्हें जाना न होगा, मैं अकेली ही रातमें जाकर औषधि ला दूँगी।

श्या०—नहीं-नहीं। एक दिन जो हो गया सो हो गया। तुम रातको अकेली न निकलना।

क०—इसके लिए तुम चिन्ता क्यों करती हो? सुन तो चुकी हो, रातको जंगलमें अकेली घूमना मेरा बचपनका अभ्यास है। मनमें विचार करो, यदि मेरा ऐसा अभ्यास न होता, तो आज कभी तुमसे मुलाकात भी न हुई होती।

श्याम०—इस ख्यालसे नहीं कहती हूँ। किन्तु यह ख्याल है कि रातको जंगलमें अकेली घूमना क्या भले घरकी बहू-बेटियोंका काम है? दो आदमियोंके रहने पर तो इतना तिरस्कार उठाना पड़ा, तुम यदि अकेली गयीं, तो भला कैसे रक्षा होगी?

क०—इसमें हर्ज ही क्या है? तुम क्या यह ख्याल करती हो कि मैं रातमें घरके बाहर होते ही कुचरित्रा हो जाऊँगी?

श्या०—नहीं-नहीं। यह ख्याल नहीं। लेकिन बुरे लोग तो बुराई करते ही हैं।

क०—कहने दो; मैं उनके कहनेसे बुरी तो हो न जाऊँगी।

श्या०—यह तो है ही; लेकिन तुम्हें कोई बुरा-भला कहे तो हम लोगोंके मनको चोट पहुँचेगी।

क०—इस तरहकी व्यर्थकी चोट न पहुँचने दो।

श्या०—खैर, मैं यह भी कर सकूँगी, लेकिन भैयाको क्यों नाराज-दुखी करती हो!

कपालकुण्डलाने श्यामासुन्दरीके प्रति एक विमल कटाक्षपात किया। बोली—"इसमें यदि वह नाराज हों, तो मैं क्या करूँ, मेरा क्या दोष? अगर जानती कि स्त्रियोंका विवाह दासी बनना है, तो कभी शादी न करती।

इसके बाद और जवाब-सवाल करना श्यामासुन्दरीने उचित न समझा; अतः वह अपने कामसे हट गयी।

कपालकुण्डला आवश्यकीय कार्यादिसे निवृत्त हुई। घरके कामसे खाली हो, वह औषधि लानेके लिये घरसे निकल पड़ी उस समय एक पहर रात बीत चुकी थी। चाँदनी रात थी। नवकुमार बाहरी कमरेमें बैठे हुए थे। उन्होंने खिड़कीमें से देखा कि कपालकुण्डला बाहर जा रही है। उन्होंने भी घरके बाहर हो मृण्मयी का हाथ पकड़ लिया। कपालकुण्डलाने पूछा—"क्या ?"

नवकुमारने पूछा—"कहाँ जाती हो ?" नवकुमारके स्वरमें तिरस्कारका लेशमात्र भी न था।

कपालकुण्डला बोली—"श्यामासुन्दरी अपने पतिको वशमें करनेके लिए एक जड़ी चाहती है, वही लेने जाती हूँ।"

नवकुमारने पूर्ववत् कोमल स्वरमें पूछा—"कल तो एक बार हो आई थी; फिर आज क्यों ?"

क०—कल खोजकर पा न सकी। आज फिर खोजूँगी।

नवकुमारने कोमल स्वरमें ही कहा—"अच्छा, दिनमें जानेसे क्या काम न होगा ?" नवकुमारका स्वर स्नेहपूर्ण था।

कपालकुण्डलाने कहा—"लेकिन दिनकी ली गयी जड़ी फलती नहीं।"

नव०—तो तुम्हें खोजनेकी क्या जरूरत है ? मुझे जड़ीका नाम बता दो, मैं खोजकर ला दूँगा।

क०—मैं पेड़ देखकर पहचान सकती हूँ, उसका नाम नहीं जानती और तुम्हारे तोड़नेसे भी उसका फल न होगा। औरतोंको बाल खोलकर तोड़ना पड़ता है। तुम परोपकारमें विघ्न न डालो।

कपालकुण्डलाने यह बात अप्रसन्नतापूर्वक कही। नवकुमारने भी फिर आपत्ति न की। बोले—"चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

कपालकुण्डलाने अभिमान भरे स्वरमें कहा—"आओ, मैं अविश्वासिनी हूँ या क्या हूँ, अपनी आँखसे देख लो।"

नवकुमारने फिर कुछ न कहा। उन्होंने कपालकुण्डलाका हाथ त्याग दिया और घरके अन्दर चले गये। कपालकुण्डला अकेली जङ्गलमें घुसी।

: २ :

जंगलमें

—"Tender is the night.
and happy the queen moon is on her throne
Clustered around by all her starry fays.
But see there is on light"

—Keats.

सप्तग्रामका यह भाग जङ्गलमय है, यह बहुत कुछ पहले लिखा जा चुका है। गाँवसे थोड़ी ही दूर पर घना जङ्गल है। कपालकुण्डला एक संकीर्ण जङ्गली राहसे अकेली औषधिकी खोजमें चली। निस्तब्ध रात्रि थी, शब्दहीन, किन्तु मधुर। मधुर रात्रिमें स्निग्ध और उज्जवल किरण फैलाते हुए चन्द्रदेव आकाशमें रुपहले बादलोंको अतिक्रम करते अपनी यात्रा कर रहे थे। नीरव हो वृक्षके पत्ते उन किरणोंसे अठखेलियाँ कर रहे थे। शान्त लतागुल्मोंके बीच फूल खिलकर सफेद चाँदनीमें अपने अस्तित्वसे होड़ लगा रहे थे। पशु-पक्षी सब नीरव थे, प्रकृति नीरव थी, लेकिन कभी-

कभी घोसलोंमें बैठे पक्षियोंके डैनोंकी फड़फड़ाहट, सूखे पत्तोंके गिरनेका शब्द, सर्पादि जीवोंके रेंगने और दूर कुत्तोंके भौंकनेका शब्द सुनाई पड़ जाता था। वायु भी निस्तब्ध थी, यह बात नहीं, वह चल रही थी, लेकिन इतनी मृदुगतिसे कि केवल ऊपरी वृक्षपत्र-मात्र हिलते थे, लताएँ रस लेती थीं; आकाशमें निरभ्र मेघखण्ड धीरे-धीरे उड़ रहे थे। उस प्रकृतिकी नीरवताका सुख लेनेवाला अनुभव कर सकता था कि मन्द वायु-प्रवाह जारी है। पूर्व-सुखकी स्मृति जाग रही थी।

कपालकुण्डलाकी पूर्व स्मृति इस समय जागी। उसे याद आया कि सागर तटवर्ती बालियाड़ी ढूहेपर मन्द वायु किस प्रकार उसके केशोंके साथ खिलवाड़ करती थी। आकाशकी तरफ देखा, अनन्त नील मण्डल याद आया, समुद्रका रूप। कपालकुण्डला इसी तरह-की पूर्व स्मृतिसे अनमनी चली जा रही है।

अनमनी होनेके कारण, कपालकुण्डलाको याद न रहा कि वह किस कामके लिए कहाँ जा रही है। जिस राहसे वह जा रही है, वह क्रमशः अगम्य होने लगा। जंगल घना हो गया। मस्तकपर लता-वृक्षका वितान घना हो गया। चाँदनी न आनेके कारण अँधेरा हो गया। क्रमशः राह भी गुम हो गयी। राह न मिलनेके कारण कपालकुण्डलाका स्वप्न भंग हुआ। उसने उधर ताक कर देखा, दूर एक रोशनी जल रही थी। लुत्फुन्निसाने भी पहले इसी रोशनीको देखा था। पूर्व अभ्यासके कारण कपालकुण्डला इन सब बातोंसे भयरहित थी; लेकिन कौतूहल तो अवश्य हुआ। वह धीरे-धीरे उस ज्योतिके समीप पहुँची। उसने जाकर देखा कि जहाँ रोशनी जल रही है, वहाँ तो कोई भी नहीं; किन्तु उससे थोड़ी ही दूर पर घना जंगल होनेके कारण एक टूटी मड़ैया-सी अस्पष्ट दिखाई दी। उसकी दीवारें यद्यपि ईंटों की थीं, किन्तु टूटी-फूटी-

छोटीसी केवल एक कोठरीमात्र थी। उस घरमें से बातचीतकी आवाज आ रही थी। कपालकुण्डला निःशब्द पैर रखती हुई उस मड़ैयाके पास जा पहुँची। पास पहुँचते ही मालूम हो गया कि दो मनुष्य सावधानीके साथ बातें कर रहे हैं। पहले तो वह बात कुछ समझ न सकी; लेकिन बादमें पूरी चेष्टा करने पर निम्नलिखित प्रकार की बातें सुनाई पड़ीं—

एक कह रहा है—"मेरा अभीष्ट मृत्यु है; इसमें यदि ब्राह्मण सहमत न हों, तो मैं तुम्हारी सहायता न करूँगा; तुम भी मेरी सहायता न करना।"

दूसरा बोला—"मैं भी मंगलाकांक्षी नहीं हूँ, लेकिन जीवन भरके लिए, उसका निर्वासन हो; इसमें मैं राजी हूँ। लेकिन हत्याकी कोई चेष्टा मेरे द्वारा नहीं हो सकती, वरन् उसके प्रतिकूलाचरण ही करूँगी।

फिर पहलेने कहा—"बहुत अबोध हो तुम। तुम्हें कुछ ज्ञान सिखाता हूँ। मन लगाकर सुनो। बहुत ही गूढ़ बातें कहूँगा। एक बार चारों तरफ देख तो जाओ, मुझे श्वासकी आवाज लग रही है।"

वस्तुतः बातें मजेमें सुननेके लिए कपालकुण्डला मड़ैयाके दरवाजेके समीप ही आ गयी थी। अतीव आग्रह होनेके कारण उसकी साँसें जोर-जोरसे चल रही थीं।

साथीकी बातोंपर एक व्यक्ति घरके दरवाजे पर आया और आते ही उसने कपालकुण्डलाको देख लिया। कपालकुण्डलाने भी चमकीली चाँदनीमें उस आगन्तुकको देखा। वह स्थिर न कर सकी कि उस आगन्तुकको देखकर वह खुश हो, या डरे। उसने देखा कि आगन्तुक ब्रह्मवेशी है। सामान्य धोती पहने हुए है, शरीर एक उत्तरीय द्वारा अच्छी तरह ढँका हुआ है। ब्राह्मणकुमार बहुत ही कोमल और नवयुवक जान पड़ा; कारण, उसके चेहरेसे

बहुत ही कमनीयता दिखाई पड़ी थी, चेहरा अतीव सुन्दर है, स्त्रियों के चेहरेके अनुरूप, लेकिन रमणी दुर्लभ तेजविशिष्ट है। उसके बाल मर्दोंकी तरह कटे हुए नहीं, बल्कि स्त्रियोंकी तरह घुँघराले कुछ पीठ और छाती पर लटक रहे थे। ललाट पर चमक, उभरा हुआ और एक शिरा साफ दिखाई पड़ती थी। दोनों आँखोंमें गजबका तेज था। हाथमें एक नङ्गी तलवार थी। किन्तु इस रूप-राशिमें एक तरहका भीषण भाव दिखाई पड़ रहा था। हेमन्त वर्णपर मानो कोई कराल छाया पड़ गयी हो उसकी अन्तस्तल तक धँस जानेवाली आँखोंकी चमक देखकर कपालकुण्डला भयभीत हुई।

दोनों एक दूसरेको एक क्षण तक देखते रहे। पहले कपाल-कुण्डलाने आँखें झपकायीं। उसकी आँखें झपकते ही आगन्तुकने पूछा—"तुम कौन ?"

यदि एक वर्ष पहले उस जङ्गलमें ऐसा प्रश्न किसीने किया होता तो कपालकुण्डला समुचित उत्तर तुरत प्रदान करती, लेकिन इस समय इस बदली हुई परिस्थितिमें वह गृहलक्ष्मी-स्वभाव हो गयी थी, अतः सहसा उत्तर दे न सकी। ब्राह्मणवेशी कपाल-कुण्डलाको निरुत्तर देखकर गम्भीर होकर कहा—"कपालकुण्डला ! इस रातमें भयानक जंगलमें तुम किस लिए आई हो ?"

एक अज्ञात रात्रिंचर पुरुषके मुखसे अपना नाम सुनकर कपाल-कुण्डला अवाक् हो रही। फिर उसके मुँहसे कोई जवाब न निकला।

ब्राह्मणवेशीने फिर पूछा—"तुमने हम लोगोंकी बातें सुनी हैं ?"

सहसा कपालकुण्डलाकी वाक्शक्ति फिर जागी। उसने उत्तर देनेके बाद पूछा—"मैं भी वही पूछती हूँ। इस जंगलमें रातके समय तुम दोनों कौन-सी कुमन्त्रणा कर रहे थे ?"

ब्राह्मणवेशी कुछ देरतक चिन्तामग्न निरुत्तर रहा। मानो उसके हृदयमें कोई नयी इष्टसिद्धिका प्रकार आ गया हो। उसने कपाल-

कुण्डलाका हाथ पकड़ लिया और उस मड़ैयासे थोड़ा किनारे हटा कर ले जाने लगा। कपालकुण्डलाने बड़े ही क्रोधसे झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया। ब्राह्मणवेशीने बड़ी मिठाससे कानोंके पास धीरेसे कहा—"चिन्ता क्यों करती हो? मैं पुरुष नहीं हूँ।"

कपालकुण्डला और आश्चर्यमें आई। इस बातका उसे कुछ विश्वास भी हुआ और नहीं भी। वह ब्राह्मणवेशधारिणीके साथ गयी। उस टूटे घरसे थोड़ी दूर आड़में पहुँचकर उसने कहा—"हम लोग जो कुपरामर्श कर रहे थे, उसे सुनोगी? वह तुम्हारे ही सम्बन्ध में है।"

कपालकुण्डलाका भय और आग्रह बढ़ गया। बोली—"सुनूँगी।" छद्मवेशीने कहा—"तो जबतक न लौटूँ, यहीं प्रतीक्षा करो।"

यह कहकर वह छद्मवेशी उस भग्न घरमें लौट गया। कपालकुण्डला कुछ देर तक यहाँ खड़ी रही। लेकिन उसने जो कुछ सुना और देखा था, उससे उसे बहुत भय जान पड़ने लगा। यह कौन जानता है कि वह छद्मवेशी उसे यहाँ क्यों बैठा गया है? हो सकता है, अपना अवसर पाकर वह अपनी अभिसन्धि पूर्ण किया चाहता हो। यह सब सोचती हुई कपालकुण्डला भयसे विह्वल हो गयी। इधर ब्रह्मवेशीके लौटनेमें देर होने लगी। अब कपालकुण्डला बैठी रह न सकी, तेजीसे घरकी तरफ चली।

उधर आकाश भी घटासे काला पड़ने लगा। जंगलमें चाँदनी से जो प्रकाश फैल रहा था, वह भी दूर हो गया। कपालकुण्डला को प्रतिपल देर जान पड़ने लगी। अतः वह तेजीसे जंगलसे बाहर होने लगी। आनेके समय उसे साफ पीछेसे दूसरेकी पदध्वनि सुनाई पड़ने लगी। पीछे फिरकर देखनेसे अन्धकारमय कुछ

दिखाई न पड़ा। कपालकुण्डलाने सोचा कि ब्रह्मवेशी उसके पीछे आ रहा है। घना जंगल पीछे छोड़ वह उस क्षुद्र जंगली राहपर आ गयी थी। वहाँ उतना अँधेरा न था, देखनेसे कुछ दिखाई पड़ सकता था, लेकिन उसे कुछ भी दिखाई न पड़ा। अतः वह फिर तेजीसे कदम बढ़ाती हुई चली, फिर पदशब्द सुनाई पड़ा। आकाश काली-काली घटाओंसे भयानक हो उठा था। कपालकुण्डला और भी तेजीसे आगे बढ़ी। घर बहुत ही करीब था; लेकिन इसी समय हवाके झटकेके साथ बूँदी पड़ने लगी। कपालकुण्डला दौड़ी। उसे ऐसा जान पड़ा कि पीछा करनेवाला भी दौड़ा। घर सामने दिखाई पड़ते-न-पड़ते भयानक वर्षा शुरू हो गयी। भयानक गर्जनके साथ बिजली चमकने लगी। आकाशमें बिजलीका जाल बिछ गया और रह-रहकर वज्र टूटने लगा। कपालकुण्डला किसी तरह आत्मरक्षा कर घर पहुँची। पासका बगीचा पारकर दरवाजेके अन्दर दाखिल हुई। दरवाजा उसके लिए खुला हुआ था। दरवाजा बन्द करनेके लिए वह पलटी। उसे ऐसा जान पड़ा कि सामने दरवाजेके बाहर कोई वृद्धाकार मनुष्यमूर्ति खड़ी थी। इसी समय एक बार बिजली चमक गयी। उस एक ही चमकमें कपालकुण्डला उसे पहचान गयी। वह सागरतीरवासी वही कापालिक है।

★

: ३ :

स्वप्नमें

"I had a dream; which was
not at all adream."

—Byron

कपालकुण्डलाने धीरे-धीरे दरवाजा बन्द कर दिया और शयनागारमें आयी। वह धीरेसे अपने पलंगपर सो रही। मनुष्य-हृदय अनन्त समुद्र है, जब उससे प्रबल वायु समर करने लगती है तो कितनी तरंगें उठती हैं, यह कौन गिन सकता है। प्रबल वायुसे हिलता और वर्षाजलसे भींगा हुआ जटाजूटधारी कापालिकका चेहरा उसे सामने दिखाई पड़ने लगा; पहलेकी समूची घटनाओंकी कपालकुण्डला याद करने लगी। घने जंगलमें कापालिककी वह भैरवी पूजा, अन्यान्य पैशाचिक कार्य, वह उसके साथ कैसा आचरण कर भागकर आयी है, नवकुमारको बन्धन, यह सब याद आने लगा। कपालकुण्डला काँप उठी। आज रातकी सारी घटनाएँ आँखके सामने नाच उठीं। श्यामाकी औषधि-कामना, नवकुमारका निषेध, उनके प्रति कपालकुण्डलाका तिरस्कार, इसके बाद अरण्यकी ज्योत्स्नामयी शोभा, वह भीषण दर्शन सब याद आया।

पूर्व दिशामें उषाकी मुकुट ज्योति प्रकट हुई, उस समय कपालकुण्डलाको तन्द्रा आ गयी। उस हल्की नींदमें कपालकुण्डला स्वप्न देखने लगी। मानों वह उसी सागरवक्षपर नावपर सवार चली जा रही है, तरणी सजी हुई, उसपर वासन्ती रंगकी ध्वजा फहरा रही है, नाविक फूलोंकी माला पहने हुए, नाव खे रहे हैं।

राधेश्यामका अनन्त प्रणयगीत हो रहा है। पश्चिम गगनसे सूर्य तप रहे हैं, स्वर्ण धारामें समुद्र हँस रहा है। आकाशमें खण्ड-खण्ड मेघ भी उस धारामें स्नान कर रहे हैं। एकाएक रात हो गयी। सूर्य कहाँ चले गये! सुनहले बादल कहाँ गए! घने-काले बादल छा गये। समुद्रमें दिक्भ्रम होने लगा। किधर जाया जाय? नाव पलटी। गाना बन्द हुआ, गलेकी माला फेंक दी गयी, पताका गायब हो गयी, आँधी आयी। सागरमें वृक्ष-परिमाण लहरें उठने लगीं। लहरसे कापालिक प्रकट हुआ। बाएँ हाथमें नाव पकड़ डुबानेको तैयार हुआ। इसी समय वह ब्राह्मणवेषधारी प्रकट हुआ। उसने पूछा—"बोलो नाव डुबा दें, या बचा दें?" कपालकुण्डलाने कहा—"डुबा दो।" उसने नावको छोड़ दिया। नाव भी बोल उठी—"अब मैं भार उठा न सकूँगी, पातालमें जाती हूँ?" यह कहती हुई नाव पातालमें प्रवेश कर गयी।

पसीनेसे नहायी हुई, कपालकुण्डला स्वप्नसे जाग उठी। उसने देखा कि सबेरा हो गया है। उन्मुक्त खिड़कीसे वासन्ती हवा आ रही है। वृक्ष हलकी हवासे फूल सहित झूम रहे हैं। हिलती शाखाओंपर बैठे पक्षी गा रहे हैं। कितनी फूलोंसे लदी शाखाएं खिड़कीके अन्दर घुसी आ रही हैं। कपालकुण्डला नारी-स्वभाववश उन शाखाओंको एकत्र करने लगी। एकाएक उसमेंसे एक लिपि बाहर हुई। कपालकुण्डला पढ़ना जानती थी; उसने पढ़ा—

पत्र यों था—

"आज शामके बाद कल रातकी तरह ब्राह्मणकुमारके साथ मुलाकात करो। तुम अपने बारेमें जो प्रयोजनीय बात सुनना चाहती थीं, उसे सुनोगी।—अहं ब्राह्मणवेशी।"

★

: ४ :

संकेतानुसार

उस दिन शामतक कपालकुण्डला केवल यही चिन्ता करती रही कि ब्राह्मणवेशीके साथ मुलाकात करना चाहिए या नहीं। एक पतिव्रता युवतीके लिये निर्जन रातमें परपुरुष सम्भाषण बुरा और निन्दनीय है, केवल यही विचार कर वह मिलनेमें हिचकती थी, कारण, उसका सिद्धान्त था कि असद्उद्देश्यसे न मिलनेसे कोई हानि नहीं है। स्त्रीको स्त्रीसे या पुरुषको पुरुषसे मिलनेका, जैसा अधिकार मुझे है, वैसा ही अधिकार निर्मल चित्त रखनेपर उसे भी प्राप्त है। सन्देह केवल यह है कि ब्राह्मणवेशी पुरुष है या स्त्री। उसे संकोच था तो केवल इसलिए कि मुलाकात मंगलजनक है अथवा नहीं। पहले ब्राह्मणवेशीसे मुलाकात, फिर कापालिक द्वारा पीछा और दर्शन और अन्तमें स्वप्न, इन सब घटनाओंने कपालकुण्डलाको बहुत डरा दिया था। उसका अमङ्गल निकट है उसे ऐसा जान पड़ने लगा और उसे यह भी सन्देह न रहा कि यह अमङ्गल कापालिकके आगमनके कारण है। यह तो स्पष्ट ही उसने कहा कि बातें कपालकुण्डलाके बारेमें ही हो रही थीं। हो सकता है, उसके द्वारा कोई बचावकी भी राह निकल आये। लेकिन बातोंसे तो यही जान पड़ता है कि या तो मृत्यु अथवा निर्वासन दण्ड। तो क्या ये सारी बातें मेरे ही लिए हैं? ब्राह्मणवेशीने तो कहा था कि उसके बारेमें ही बात है। ऐसी कुमंत्रणामें ब्राह्मणवेशी जब सहकारी है, तो उससे मिलना मंगलजनक नहीं, बल्कि आफत स्वयं बुलाना होगा। लेकिन रातमें जो स्वप्न देखा उसमें तो ब्राह्मणवेशीके कथनसे जान पड़ा कि वह रक्षा भी कर सकता है।

तो क्या होगा ? क्या वह स्वप्नकी तरह डुबायेगा ? हो सकता है, माताजीने उसे इसीलिए भेजा हो कि उससे मेरी रक्षा ही हो। अतएव कपालकुण्डलाने मुलाकात करनेका ही निश्चय किया। बुद्धिमान ऐसा सिद्धान्त करता या नहीं, सन्देह है, लेकिन यहाँ बुद्धिमानीसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। कपालकुण्डला कच्ची उम्र की थी, अतः उसने बुद्धिमानीका विचार नहीं किया। उसने कुतूहली रमणी जैसा सिद्धान्त किया; भीमकान्त रूपराशि दर्शन लोलुप जैसा कार्य किया; नैशवनविहारिणी संन्यासीपालिताकी तरह सिद्धान्त किया और सिद्धान्त किया दीपक शिखापर पतित होनेवाले पतंगेकी तरह।

सन्ध्याके बाद बहुत-कुछ गृह-कार्य समाप्त कर कपालकुण्डलाने पहलेकी तरह बनयात्रा की। यात्राके समय कपालकुण्डलाने अपने कमरेका दीपक तेज कर दिया। लेकिन वह जैसे ही घरके बाहर हुई दीपक बुझ गया।

यात्राके समय कपालकुण्डला एक बात भूल गयी। ब्राह्मण-वेशधारीने किस जगह मुलाकातके लिए लिखा है ? अतः पत्र पढ़नेकी फिर आवश्यकता हुई। उसने लौटकर पत्र रखा हुआ स्थान ढूँढा, लेकिन वहाँ पत्र न मिला। याद आया कि उसने पत्रको अपने जूड़ेमें खोंस लिया था। अतः जूड़ेमें देखा, वेणी खोलकर देखा, लेकिन पत्र न मिला। घरके अन्य स्थानोंको खोजा। अतएव पूर्व स्थानपर मिलनेके ख्यालसे निकल पड़ी। जल्दीमें उसने फिर अपने खुले बाल बाँधे नहीं। अतः आज कपालकुण्डला प्रथम अनूढ़ाकी तरह उन्मुक्तकेशा होकर चली।

★

: ५ :

दरवाजेपर

"Stand you a while apart
Confine yourself, but in a patient list.

—Othello

सन्ध्यासे पहले जब कपालकुण्डला गृहकार्यमें लगी हुई थी, उसी समय वह पत्र जूड़ेसे खसककर गिर पड़ा था। कपालकुण्डला को पता न रहा। उसे नवकुमारने देख लिया। जूड़ेसे पत्र गिरते देख उन्हें आश्चर्य हुआ। कपालकुण्डलाके वहाँसे हट जानेपर उन्होंने पत्रको पढ़ा, उसके पढ़नेसे एक ही सिद्धान्त सम्भव है। "जो बात कल सुनना चाहती थी, वह आज सुनेंगी!" वह कौन-सी बात है? क्या प्रणय वाक्य? क्या ब्राह्मणवेशधारी मृण्मयीका उपपति है? जो व्यक्ति पहली रातकी घटनासे अवगत नहीं है, वह केवल यही सोच सकता है।

स्वामीके साथ सती होनेके समय अन्य किसी कारणसे जब कोई जीता हुआ चितारोहण करता है और चितामें आग लगा दी जाती है तो पहले धुएँसे उसके चारों ओरका स्थान घिर जाता है, फिर क्रमशः लकड़ियोंके बीचसे एक-दो अग्निशिखा सर्प जिह्वाकी तरह उसके अंगपर आकर आक्रमण करती हैं, फिर अन्तमें ज्वालमाला चारों तरफसे घेर लेती है और शिरपर्यन्त अग्नि पहुँच कर उसे दग्ध कर राख बना देती है।

पत्र पढ़नेपर नवकुमारका भी यही हाल हुआ। पहले समझे नहीं, फिर संशय, निश्चयता, अन्तमें ज्वाला। मनुष्यका हृदय एकबारगी दुःख या सुख बर्दाश्त कर नहीं सकता; क्रमशः ग्रहण

कर सकता है। पहले तो धुएँने नवकुमारको घेर लिया; इसके बाद अग्निशिखा हृदयपर ताप पहुँचाने लगी, अन्तमें हृदय भस्म होने लगा। उन्होंने विचारकर देखा कि अबसे पहले किन बातोंमें कपालकुण्डला अबाध्य रही है। उन्होंने देखा कि यह स्वतन्त्रता ही है। वह सदा स्वतन्त्र रही, जहाँ कहीं घूमने गयी अकेली। दूसरोंके शिकायत करनेपर भी नवकुमारने कभी उसपर सन्देह न किया, लेकिन आज वह सब यादकर उन्हें प्रतीति होने लगी।

यंत्रणाका प्रथम वेग निकल गया। नवकुमार एकान्तमें चुप-चाप बैठ कर रोने लगे, रोनेके बाद कुछ स्थिर हुए। इसके बाद उन्होंने अपना कर्त्तव्य निश्चित किया। आज वह कपालकुण्डलासे न कहेंगे। रातको कपालकुण्डला जब यात्रा करेगी, तो उसका पीछा करेंगे और इसके बाद अपना जीवन-त्याग देंगे। कपालकुण्डलाको कुछ न कहेंगे, बल्कि अपना प्राणनाश करेंगे।

ऐसा सोचकर वह कपालकुण्डलाके जानेकी राह खिड़की द्वारा देखते रहे। कपालकुण्डलाके निकलकर जानेके बाद नवकुमार भी उठकर चले, लेकिन इसी समय कपालकुण्डला फिर वापस आई। यह देख वह धीरेसे खिसक गये। अन्तमें कपाल-कुण्डलाके फिर बाहर होनेपर, जब नवकुमार भी बाहर चले, तो उन्हें दरवाजेपर एक दीर्घाकार पुरुष खड़ा दिखाई दिया।

वह व्यक्ति कौन है; क्यों खड़ा है, जाननेकी कोई इच्छा नवकुमारको न हुई। वह केवल कपालकुण्डलापर निगाह रखे हुए चले, अतएव खड़े मनुष्यकी छातीपर धक्का दे उन्होंने उसे हटाना चाहा, लेकिन वह हटा नहीं।

नवकुमारने कहा—"कौन हो तुम? हट जाओ, मेरी राह छोड़ो।"

आगन्तुक बोला—"क्या नहीं पहचानते, मैं कौन हूँ" यह

शब्द समुद्रनादवत् जान पड़ा। नवकुमारने और गौरसे देखा—वही पूर्वपरिचित—कापालिक।

नवकुमार चौंक उठे। लेकिन डरे नहीं। सहसा उनका चेहरा प्रसन्न हो गया। उन्होंने पूछा—"क्या कपालकुण्डला तुमसे मिलने जा रही है?"

कापालिकने कहा,—"नहीं?"

आशा-प्रदीप जलते ही बुझ गया। नवकुमारका चेहरा फिर पहले जैसा हो गया। बोले—"तो तुम राहसे हट जाओ।"

कापालिकने कहा—"राह छोड़ दूंगा, लेकिन तुमसे कुछ कहना है, पहले सुन लो।"

नवकुमार बोले,—"तुमसे मेरी कौनसी बात है? क्या तुम फिर मेरा प्राण लेने आये हो? तो ग्रहण करो, इस बार मैं मना न करूँगा। तुम जरा ठहरो, मैं अभी आता हूँ। मैंने क्यों न देवतुष्टि-के लिये प्राण दिया! अब उसका फल भुगत रहा हूँ। जिसने मेरी रक्षा की थी, उसीने नष्ट किया। कापालिक! अब अविश्वास न करो। मैं अभी लौटकर आत्म-समर्पण करता हूँ।

कापालिकने उत्तर दिया—"मैं तुम्हारे वधके लिए नहीं आया हूँ, भवानी की वैसी इच्छा नहीं। मैं जो करने आया हूँ, उसमें तुम्हारा भी अनुमोदन है। घरके अन्दर चलो, मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो।"

नवकुमारने कहा—"अभी नहीं, फिर दूसरे समय सुनूँगा। तुम जरा मेरी अपेक्षा करो। मुझे बहुत जरूरी काम है, पूरा कर अभी आता हूँ।"

कापालिकने कहा—"वत्स! मैं सब जानता हूँ तुम उस पापिनीका पीछा करोगे। मैं जानता हूँ, वह जा रही है। मैं अपने साथ तुम्हें वहाँ ले चलूँगा। जो देखना चाहते हो दिखाऊँगा, लेकिन जरा मेरी बात सुन लो। डरो नहीं।"

नवकुमारने कहा—"अब मुझे तुम से कोई डर नहीं; आओ।"

यह कहकर नवकुमार कापालिकको लेकर अन्दर गये और एक आसनपर उसे बिठाकर तथा स्वयं बैठते हुए बोले—"कहो!"

: ६ :

पुनर्वार्ता

"तद्गच्छ सिद्धं कुरु देवकार्यम्।"

—कुमारसंभव

कापालिक ने आसन ग्रहण कर अपनी दोनों बाहें नवकुमार को दिखाईं। नवकुमार ने देखा कि दोनों हाथ टूटे हुए थे।

पाठकोंको याद रह सकता है कि जिस रात कपालकुण्डला के साथ नवकुमार कापालिक-आश्रमसे भागे, उसी रात खोजने में व्यस्त बालियाड़ीके शिखरसे गिरा था। गिरनेके समय उसने शरीर-रक्षा-के लिए दोनों हाथोंसे सहारा लिया। इससे उसका शरीर तो बचा, लेकिन दोनों हाथ टूट गये। सारा हाल कहकर कापालिक ने कहा—"इन हाथों द्वारा यद्यपि दैनिक कार्य हो जाते हैं, किन्तु, इनमें अब बल नहीं है, यहाँतक कि मैं लकड़ी भी उठा नहीं सकता।"

इसके बाद बोला—"गिरते ही मैं जान गया कि मेरे दोनों हाथ टूट गये, लेकिन बादमें मैं बेहोश हो गया। पहले बेहोश और इसके बाद धीरे-धीरे जब मुझे ज्ञान हुआ तो मैं नहीं जानता था कि इस तरह मुझे कितने दिन बीते। शायद दो रातें और एक दिन था। सबेरेके समय मैं फिर पूरी तरह होशमें आया। इससे ठीक पहले मैंने स्वप्न देखा—मानो भवानी—यह कहते-कहते

कापालिकको रोमांच हो आया—मेरे सामने प्रत्यक्ष आकर खड़ी हो गयी हैं। भौंहें टेढ़ी कर ताड़ना करती और कहती हैं—'अरे दुराचारी! तेरी ही चित्तकी अशुद्धिके कारण मेरी इस पूजामें विघ्न हुआ है। इतने दिनोंतक इन्द्रिय-लालसा के वशीभूत होकर उस कुमारीके रक्तसे तूने मेरी पूजा नहीं की। अतएव इसी कुमारी द्वारा तेरे सारे पूर्व कर्मों का नाश हो रहा है। अब मैं तेरी पूजा ग्रहण न करूँगी।' इसपर मैं रोकर भगवतीके चरणोंपर लोटने लगा, तो उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—'भद्र! इसका सिर्फ एक प्रायश्चित्त बताती हूँ। उसी कपालकुण्डलाका मेरे सामने बलिदान कर। जितने दिनोंतक तुझसे यह न हो सके, मेरी पूजा न करना।'

कितने दिनों तक और किस प्रकार मैं आरोग्य हुआ, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। क्रमशः आरोग्यलाभ करनेके बाद देवीकी आज्ञा पूरी करनेकी कोशिशमें लग गया। लेकिन मैंने देखा कि इन हाथोंमें एक बच्चे जैसा बल भी नहीं। बिना बाहुबलके यत्न सफल होनेका नहीं। अतएव इसमें सहायताकी आवश्यकता हुई। विदेशी और विधर्मी राजमें इस बातमें कौन सहायक हो सकता है। बड़ी कोशिशसे पापिनीका आभास मालूम हुआ। लेकिन बाहुबलके अभावसे कार्य पूरा नहीं होता है। केवल मानससिद्धिके लिए होमादि करता हूँ। कल रातको मैंने स्वयं देखा कि कपालकुण्डलाके साथ ब्राह्मणकुमारका मिलन हुआ। आज भी वह उससे मिलने जा रही है। देखना चाहो, तो मेरे साथ आओ।

वत्स! कपालकुण्डला वधके योग्य है। मैं भवानीके आज्ञानुसार उसका वध करूँगा। वह तुम्हारे प्रति भी विश्वासघातिनी है, अतएव तुम्हें भी उसका वध करना चाहिए। अविश्वासीको पकड़ कर मेरे यज्ञ-स्थान पर ले चलो। वहाँ अपने हाथसे उसका

बलिदान करो। इससे भगवतीका उसने जो अपकार किया है, उसका दण्ड होगा, पवित्र कर्मसे अक्षय पुण्य होगा; विश्वास-घातिनीका दण्ड होगा, चरम प्रतिशोध होगा।"

कापालिक चुप हुआ। नवकुमार कुछ भी न बोले। कापालिक ने उन्हें चुप देखकर कहा—"अब चलो, वत्स! जो दिखानेको कह चुका हूँ, दिखाऊँगा।"

नवकुमार पसीनेसे तर कापालिकके साथ चले।

: ७ :

सपत्नी संभाषण

"Be at peace : it is your sister that addresses you, Require Lucretia's love.

—Lucretia.

कपालकुंडला घरसे निकलकर जंगलमें घुसी। वह पहले उस टूटे घरमें पहुँची। वहाँ ब्राह्मणसे मुलाकात हुई। दिनका समय होता तो वह देखती कि उसका चेहरा बहुत उतर गया है। ब्राह्मण-वेशीने कपालकुंडलासे कहा—"यहाँ कापालिक आ सकता है, आओ अन्यत्र चलें।" जंगलमें एक खुली जगह थी, चारों तरफ वृक्ष, बीचमें चौरस, साफ और समतल था। वहाँ बैठनेपर ब्राह्मण-वेशीने कहा—"पहले मैं अपना परिचय दूँ। मेरी बात कहाँ तक विश्वासयोग्य है, स्वयं समझ सकोगी। जब तुम अपने स्वामीके साथ हिजली देश से आ रही थी, तो राहमें एक यवन कन्याके साथ मुलाकात हुई थी। क्या तुम्हें याद है?"

कपालकुंडला बोली—"जिसने मुझे अलंकार दिये थे?"

ब्राह्मणवेशधारिणीने कहा—"हाँ, मैं वही हूँ।"

कपालकुंडला बड़े आश्चर्यमें आई। लुत्फुन्निसाने उसका विस्मय देखकर कहा—"और सबसे बड़ी अचरजकी बात है कि मैं तुम्हारी सौत हूँ।"

कपालकुंडलाने चौंककर कहा—"हैं, यह कैसे!"

इस पर लुत्फुन्निसाने शुरूसे अपना परिचय दिया। विवाह, जातिनाश, स्वामी द्वारा त्याग, सप्तग्राम आगमन, नवकुमारसे मुलाकात और व्यवहार, गत दिवस जंगल में आना, होमकारीसे मुलाकात आदि बातें वह क्रमशः कह गयी। इस समय कपाल-कुंडलाने पूछा—"तुमने किस अभिप्रायसे हमारे घर छद्मवेशमें आनेकी इच्छा की?"

लुत्फुन्निसाने कहा—"तुम्हारे साथ पतिदेवका चिरविच्छेद करानेके लिए।"

कपालकुंडला सोचमें पड़ गयी बोली—"यह कैसे सिद्ध कर पाती?"

लु०—तुम्हारे सतीत्वके प्रति तुम्हारे पतिको संशयमें डाल देती। लेकिन उसकी जरूरत नहीं; वह राह मैंने त्याग दी है। अतः अगर तुम मेरे कहे मुताबिक कार्य करो, तो सारी कामना सिद्ध हो; साथ ही तुम्हारा भी मंगल होगा।

कपा०—होमकारीके मुँहसे तुमने किसका नाम सुना था?

लु०—"तुम्हारा ही नाम। वह तुम्हारी मंगल या अमंगल कामनासे होम कर रहे हैं, यही जाननेके लिए प्रणाम कर मैं वहाँ बैठी। जब तक उनकी क्रिया समाप्त न हुई, मैं वहीं बैठी रही। होमके अन्तमें छलपूर्वक तुम्हारे नामके साथ होमका अभिप्राय पूछा। थोड़ी ही देरकी बातमें मैं समझ गयी कि होम तुम्हारी अमंगलकामनाके लिए है। मेरा भी वही प्रयोजन था, मैंने यह भी

बताया। परस्पर सहायताके लिए वचनवद्ध हुए, विशेष परामर्शके लिए भग्नकुटीमें गये। वहाँ उसने अपना मनोरथ कहा कि तुम्हारी मृत्यु ही उसे अभीष्ट है। इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं। यद्यपि मैंने इस जन्ममें पाप ही किये हैं, लेकिन मैं इतनी पतित नहीं हूँ कि एक निरपराध बालिकाकी हत्याकी कामना करूँ। मैं इसपर राजी नहीं हुई। इसी समय तुम वहाँ पहुँची। शायद तुमने कुछ सुना हो।"

कपा०—केवल तर्क ही मैंने सुना।

लु०—उस व्यक्तिने मुझे अबोध जानकर कुछ शिक्षा देना चाहा। अन्तमें क्या निश्चय होता है, यह जाननेके लिए तुम्हें एकान्तमें बैठाकर मैं गयी।

कपा०—फिर लौटकर क्यों नही आयी?

लु०—ठीक है। कापालिकने तुम्हारी प्राप्ति और पालनसे लेकर तुम्हारे भागने तकका सारा हाल कह सुनाया।

यह कहकर लुत्फुन्निसाने कापालिकका शिखरसे गिरना, हाथ टूटना, स्वप्न आदि सब कह सुनाया! स्वप्नकी बात सुनकर कपालकुण्डला चमक उठी; चित्तमें चञ्चलता भी हुई। लुत्फुन्निसाने कहा—"कापालिककी प्रतिज्ञा भवानीकी आज्ञाका प्रतिपालन है। बाहुमें बल नहीं है, इसलिये दूसरेकी सहायता चाहता है। मुझे ब्राह्मणकुमार समझकर सहायताकी आशासे उसने सब कहा। मैं अभी तक राजी नहीं हूँ। आगे भी राजी नहीं हो सकती। इस अभिप्रायसे मैं तुमसे मिली हूँ, लेकिन यह कार्य भी मैंने केवल स्वार्थसे ही किया है। तुम्हें प्राणदान देती हूँ। लेकिन तुम क्या मेरे लिए कुछ करोगी?"

कपालकुण्डलाने पूछा—"क्या करूँ?"

लु०—मुझे भी प्राणदान दो—स्वामीका त्याग करो।

कपालकुण्डला बहुत देरतक कुछ न बोली। बहुत देर बाद बोली "स्वामीको त्याग कर कहाँ जाऊँगी ?"

लु०—विदेशमें बहुत दूर। तुम्हें अट्टालिका दूँगी, धन दूँगी, दास-दासी दूँगी, रानीकी तरह रहोगी।

कपालकुण्डला फिर चिन्तामें पड़ गई। पृथ्वीमें उसने सब देखा, लेकिन कोई दिखाई नहीं दिया। अन्तःकरणमें देखा नवकुमार कहीं भी न थे, तो क्यों लुत्फुन्निसाकी राहका काँटा बनूँ ? फिर बोली—"तुमने मेरी क्या सहायताकी है, यह अभी समझ नहीं पाती हूँ। अट्टालिका, धन, दास, दासी नहीं चाहती। मैं तुम्हारे सुखमें क्यों बाधा दूँ ? तुम्हारी इच्छा पूरी हो—कलसे इस विघ्नकारिणीकी कोई खबर न पाओगी। मैं वनचरी थी, वनचरी हो जाऊँगी।"

लुत्फुन्निसा आश्चर्यमें आई। उसे इतनी जल्दी स्वीकार कर लेनेकी आशा न की थी। मोहित होकर उसने कहा—"बहन! तुमने मुझे जीवनदान दिया है। लेकिन मैं तुम्हें अनाथा होकर जाने न दूँगी। कल सबेरे मैं तुम्हारे साथ एक चतुर दासी भेजूँगी। उसके साथ जाना। वर्द्धमानमें एक बहुत बड़ी प्रधान महिला मेरी मित्र हैं, वह तुम्हारी सारी इच्छा पूरी कर देंगी।"

कपालकुण्डला और लुत्फुन्निसा इस प्रकार निश्चिन्त हो बातें कर रही थीं कि सामने कोई विघ्न ही नहीं। उसके स्थानसे जो वन्यपथ आया था, उसपर खड़े होकर कापालिक और नवकुमार उनके प्रति कराल दृष्टिसे देख रहे थे, उसे उन्होंने देखा ही नहीं।

नवकुमार और कापालिक केवल इन्हें देख रहे थे, दुर्भाग्यवश इनकी बातें सुननेकी परिधि से वे दूर थे। कौन बता सकता है कि यदि मनुष्यकी श्रवणेन्द्रिय और आँखें मनुष्य के अन्दर तकका हाल देख-सुन लेतीं तो मनुष्यका दुःख-वेग कम होता या बढ़ता। लोग कहते हैं, संसारकी रचना अपूर्व और कौशलमय है।

नवकुमारने देखा, कपालकुण्डला आलुलायित-कुन्तला है। जब वह उनकी हुई न थी, तबतक भी वेणी बाँधती न थी। उसके बाल इतने लम्बे थे और धीमे स्वरमें बातें करनेके लिये वह इतनी पास बैठी थी कि सारे बाल लुत्फुन्निसाकी पीठ तक उड़कर जा रहे थे। उनका इधर ध्यान न था। लेकिन नवकुमार यह देखकर हताश हो जमीनपर बैठ गये, यह देखकर कापालिकने अपनी बगलसे लटकते एक नारियल पात्रको निकलकर कहा—"वत्स! बल खोते हो? हताश होते हो? लो यह भवानी का प्रसाद पियो। पियो, बल प्राप्त करोगे।"

कापालिकने नवकुमारके मुँहके पास पात्र लगा दिया। नवकुमारने अनमने होकर उसे पिया और दारुण प्यास दूर की। नवकुमारको यह मालूम न था कि यह पेय कापालिककी स्वयं तैयार की हुई तेज शराब है। उसे पीते ही बल आ गया।

उधर लुत्फुन्निसाने पहलेकी तरह मृदुस्वरमें कहा—"बहन! जो काम किया है, उसका बदला दे सकनेकी मेरी शक्ति नहीं है। फिर भी, चिर दिनोंतक मैं तुम्हें याद करती रहूँ, तो यही मेरे लिये सुखकर होगा। मैंने सुना है कि जो अलङ्कार मैंने तुम्हें दिये थे, उन्हें तुमने गरीबोंको दे डाला। इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। कल दूसरा प्रयोजन सोचकर अपने साथ अंगूठी भर ले आयी थी। भगवान्की कृपासे उस पापसे दूर रही। यह अंगूठी तुम रखो। इसके उपरान्त इस अंगूठी को देखकर तुम अपनी मुफलिस बहनको याद करना। आज यदि स्वामी पूछें कि यह अंगूठी कहाँ पायी, तो कह देना—"लुत्फुन्निसा ने दिया है।" यह कहकर लुत्फुन्निसाने बहुत धन देकर खरीदी गयी उस अंगूठीको उँगलीसे उतारकर कपालकुण्डलाके हाथमें दे दिया। नवकुमारने यह भी देखा। कापालिकने नवकुमार को पकड़ रखा था, उन्हें फिर काँपते देख फिर शराब पिलायी।

मदिरा नवकुमारके माथेपर पहुँचकर उनके प्रकृत स्वभावको बदलने लगी। उसने स्नेहांकुर तकको उखाड़ फेंका।

कपालकुण्डला लुत्फुन्निसासे बिदा होकर घरकी तरफ चली। नवकुमार और कापालिक ने लुत्फुन्निसासे छिपकर कपालकुण्डला-का अनुसरण किया।

★

: ८ :

घर की तरफ

कपालकुण्डला धीरे-धीरे घरकी तरफ चली। बहुत ही धीरे मृदु-पादविक्षेपसे। इसका कारण यह था कि वह बहुत ही गहरी चिन्तामें डूबी हुई थी। लुत्फुन्निसाकी दी हुई खबरसे कपाल-कुण्डलाका चित्त बिल्कुल परिवर्तित हो गया था। वह अपने आत्म-विसर्जनके लिये तैयार हुई। आत्म-विसर्जन किसलिये? क्या लुत्फुन्निसाके लिये? यह बात नहीं।

कपालकुण्डला अन्तःकरण से तान्त्रिक की सन्तान है। जिस प्रकार तान्त्रिक भवानीके प्रसादके रूपमें दूसरेकी जान लेनेका आकांक्षी है, वैसे ही वह भी उसी आकांक्षासे आत्म-विसर्जनके लिये तैयार है। कापालिककी वजहसे कपालकुंडला केवल शक्ति-प्रार्थिनी है, यह बात नहीं, बल्कि असली कारण यह है कि संगति प्रभावके कारण देवीकी श्रद्धाभक्तिमें मनसे अनुरागिनी है। वह मजेमें समझ चुकी है कि सृष्टिशासनकर्त्री और मुक्तिदात्री एकमात्र भैरवी ही हैं। यह सही है कि भैरवीपूजामें नरबलिके रक्तसे प्राङ्गण भर उठता है, यह उसका परदुःखकातर हृदय सहनेमें असमर्थ है, किन्तु और किसी कार्यमें उसकी भक्ति-भावना कुंठित नहीं है। उन्हीं जगतशासनकर्त्री, सुख-दुःख-विधा-यिनी और मोक्षदायिनी भगवतीने स्वप्नमें उसे आत्मविसर्जनका आदेश दिया है। फिर कपालकुण्डला क्यों न उस आज्ञाको माने?

हम तुम प्राणत्याग करना नहीं चाहते। बड़े प्रेमसे जो कहते हैं कि यह संसार सुखमय है, सुखकी ही आशासे बैलकी तरह बराबर घूम रहे हैं—दुःखकी प्रत्याशासे नहीं। कहीं यदि आत्मकर्म-दोषसे इस प्रत्याशामें सफलता प्राप्त न की, तो दुःख कहकर हम चिल्लाने लगते हैं किन्तु ऐसा होनेसे ही नियम नहीं बन जा सकता, ऐसा सिद्धान्त होता है। नियमका व्यतिक्रम माना है। हमें तुम्हें हर जगह सुख ही है। उसी सुखसे संसारमें हम बँधे हुए हैं, छोड़ना नहीं चाहते। लेकिन इस संसार-बन्धनमें प्रणय ही प्रधान रस्सी है। कपालकुण्डलाके लिए वह बन्धन या नहीं कोई भी बन्धन नहीं। फिर कपालकुण्डलाको कौन रोक सकता है ? जिसके लिए बन्धन नहीं है, वही सबसे अधिक बलशाली है। गिरिशिखरसे नदीके उतरने पर कौन उसका गतिरोध कर सकता है ? एक बार आँधी आनेपर उसे कौन रोक सकता है ? कपालकुण्डलाका चित्त डाँवा-डोल हो जाये, तो उसे कौन स्थिर कर सकता है ? नये हाथीके मस्त हो जाने पर उसे कौन शान्त करे ?

कपालकुंडलाने अपने हृदयसे पूछा—"अपने इस शरीरको जगदीश्वरीके लिए क्यों न समर्पण करूँ ? पंचभूतको रखकर क्या होगा। प्रश्न वह करती थी, लेकिन कोई निश्चित उत्तर न दे सकती थी। संसारमें और कोई भी बन्धन न होनेपर पंचभूतका बन्धन तो है ही।

कपालकुंडला नीचा सिर किये चलने लगी। जब मनुष्यका हृदय किसी बड़े भावमें डूबा रहता है, तो उस समय चिन्ताकी एकाग्रतामें बाहरी जगतकी तरफ ध्यान नहीं रहता। उस समय अनैसर्गिक वस्तु भी प्रत्यक्षीभूत जान पड़ती है। इस समय कपाल-कुंडलाकी ऐसी ही अवस्था थी।

मानों ऊपरसे उसके कानोंमें वह शब्द पहुँचा—"वत्से, मैं राह दिखाती हूँ।" कपालकुंडला चकितकी तरह ऊपर देखने लगी। देखा, मानो आकाशमें नवनीरद-निन्दित मूर्ति है; गलेमें लटकने-वाली नरमुंडमालासे खून टपक रहा है; कमरमें नरकरराजि झूल

रही है; बाँये हाथमें नरकपाल; अंगमें रुधिरधारा; ललाटपर विषम उज्जवल ज्वाला विभासित है और लोचन प्रान्तोंमें बालशशि शोभित है; मानों दाहिने हाथसे भैरवी कपालकुंडलाको बुला रही है।

अब कपालकुंडला ऊर्ध्वमुखी होकर चली। वह अद्भुत देवी रूप आकाशमें उसे राह दिखा रहा था, कभी करालमालिनीका अंग बादलोंमें छिपता, कभी सामने प्रकट होकर चलता। कपाल-कुंडला उन्हींको देखती हुई चलने लगी।

नवकुमार या कापालिकने यह सब कुछ न देखा। नवकुमारने सुरा-गरल-प्रज्वलित-हृदयसे—कपालकुंडलाके धीरपदक्षेपसे असहिष्णु होकर साथीसे कहा, "कापालिक!"

कापालिकने पूछा—"क्या?"

"पानीयं देहि मे।"

कापालिकने नवकुमारको फिर शराब पिलायी।

नवकुमारने पूछा—"अब देर क्यों?"

कापालिकने भी कहा—"हाँ-हाँ, कैसी देर?"

नवकुमारने भीमनादसे पुकारा—"कपालकुंडला!"

कपालकुंडला सुनकर चकित हुई। अभी तक यहाँ कपालकुंडला कह कर किसीने पुकारा न था। वह पलटकर खड़ी हो गयी। नव-कुमार और कापालिक उसके सामने आकर खड़े हो गये। कपाल-कुंडला पहले उन्हें पहचान न सकी, बोली—"तुम लोग कौन हो? यमदूत?"

लेकिन दूसरे ही क्षण पहचान कर बोली—"नहीं नहीं, पिता! क्या तुम मुझे बलि देनेके लिए आये हो?"

नवकुमारने मजबूतीके साथ कपालकुंडलाका हाथ पकड़ लिया। कापालिकने करुणार्द्र, मधुर स्वरमें कहा—"वत्से! हम लोगोंके साथ आओ।" यह कह कर कापालिक श्मशानकी राह दिखाता आगे चला।

कपालकुंडलाने आकाशकी तरफ फिर निगाह उठायी, जिधर

उस भैरवीकी विकराल मूर्तिको देखा था, उधर देखा। देखा, रण-रंगिणी खिलखिला कर हँस रही है। कपालकुंडला अदृष्टविमूढ़की तरह कापालिकका अनुसरण करती चली। नवकुमार उसी तरह उसे पकड़े हुए साथ ले चले।

★

: ९ :

प्रेत भूमिमें

"वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत्।
ननु तैलनिषेकविन्दुना सह दीप्तार्चिरुपैति मेदिनीम्॥"
—रघुवंश

चन्द्र अस्त हुए। विश्वमंडलपर अन्धकारका पर्दा पड़ गया। कापालिकने जहाँ अपना पूजास्थान बनाया था, वहीं कपालकुंडला को वह ले गया। गङ्गा तट पर वह एक वृहत् बालूकी भूमि है। उसके सामने ही एक ओर बहुत बड़ी रेतीली भूमि है। वही श्मशान है। दोनों रेतीली भूमियोंके बीच जल बढ़नेके समय पानी रहता है। भाटेके समय नहीं रहता—इस समय भी नहीं है। श्मशानभूमिका जो हिस्सा गङ्गातट पर जाता है, वह किनारेपर जाकर बहुत ऊँचा हो गया है, उसके नीचे अगाध जल है। अविरल वायु-प्रवाहके कारण किनारा कभी-कभी खिसक कर गङ्गामें गिरा करता है। पूजाके स्थानमें दीपक न था—केवल जलती लकड़ीसे प्रकाश था—ऐसा प्रकाश जो उसकी भयानकताको बढ़ा रहा था। पासमें ही पूजा, होम, बलिका सारा सामान मौजूद था। विशाल नदीका हृदय अन्धकारसे पूर्ण था। चैत्र मासकी वायु गङ्गाको विक्षुब्ध बनाये हुई थी। इस कारण कलकल नाद दिक्‌मंडलमें व्याप्त हो रहा था। शमशानके शवभक्षक पशु रह-रहकर चिल्ला पड़ते थे।

कापालिकने नवकुमार और कपालकुंडलाको उपयुक्त स्थानपर बैठाया और स्वयं पूजामें लग गया। उससमय उसने नवकुमारको

आदेश दिया कि कपालकुंडलाको स्नान करा लावें। नवकुमार कपालकुंडलाको हाथ पकड़े रेत पार कर स्नान कराने चले। उनके पदभारसे हड्डियाँ टूटने लगीं। नवकुमारके पदाघातसे श्मशानका एक कलश भी टूट गया, उसके पास ही एक शव पड़ा हुआ था—हतभागेका किसीने संस्कार तक न किया था। दोनोंके ही पदसे उसका स्पर्श हुआ। कपालकुंडला उसे बचाकर निकल गयी, लेकिन नवकुमार उसे पददलित कर गये। शवभक्षक पशु चारों तरफ घूम रहे थे। दोनों जनको वहाँ उपस्थित देख वे सब चिल्ला उठे। कोई आक्रमण करने आया, तो कोई भाग गया। कपालकुंडलाने देखा कि नवकुमारका हाँथ काँप रहा है। कपालकुंडला स्वयं निर्भय निष्कम्प थी।

कपालकुंडलाने पूछा—"स्वामिन! क्या डर लगता है?"

नवकुमारका मदिरामोह क्रमशः क्षीण होता जा रहा था। गम्भीर स्वरसे नवकुमारने कहा—"भयसे, मृण्मयी! नहीं!"

कपालकुंडलाने फिर पूछा—"तब काँपते क्यों हो?"

यह प्रश्न कपालकुंडलाने जिस स्वरसे किया, यह केवल रमणी हृदयसे ही सम्भव था। जब रमणी परदुःखकातर होती है, तभी ऐसा स्वर निकलता है। कौन जानता था कि साक्षात् श्मशानमें ऐसी आवाज कपालकुंडलाके मुँहसे निकलेगी।

नवकुमारने कहा—"भयसे नहीं। रो नहीं पाता हूँ; क्रोधसे काँपता हूँ।"

कपालकुंडलाने पूछा—"रोओगे क्यों?"

फिर वही कंठ!

नवकुमार बोले—"क्यों रोऊँगा? तुम क्या समझोगी, मृण्मयी तुम तो कभी सौन्दर्य देखकर उन्मत हुई नहीं।"—कहते-कहते यातनासे नवकुमारका गला भर गया। "तुम तो कभी अपना कलेजा स्वयं काटनेके लिये श्मशान आई नहीं, मृण्मयी!" यह कहते-कहते सहसा नवकुमार पुक्का फाड़कर रोते हुए कपालकुंडलाके चरणों पर गिर पड़े।

"मृण्मयी ! कपालकुंडले ! मेरी रक्षा करो ! मैं तुम्हारे पैरपर रोता हूँ, एक बार कह दो, तुम अविश्वासिनी नहीं हो—एक बार कहो मैं तुम्हें हृदयमें उठाकर घर ले चलूँ।"

कपालकुंडलाने हाथ पकड़ कर नवकुमारको उठाया और मृदु-स्वर से उसने कहा—"तुमने तो मुझसे पूछा नहीं।"

जब यह बातें हुईं, तो दोनों तट पर आ खड़े हुए। कपाल-कुंडला आगे थी उसके पीछे जल था। जलका उच्छ्वास शुरू हो गया था, कपालकुंडला एक ढूहे पर खड़ी थी। उसने जवाब दिया —"तुमने तो मुझसे पूछा नहीं।"

नवकुमारने पागलोंकी तरह कहा—"अपना चैतन्य खो चुका हूँ—क्या पूछूँ मृण्मयी ! बोलो बोलो; मुझे बचालो, घर चलो।"

कपालकुंडलाने कहा—"जो तुमने पूछा है, तो बताती हूँ। आज जिसे तुमने देखा—वह पद्मावती थी, मैं अविश्वासिनी नहीं हूँ। यह वचनस्वरूप कहती हूँ। लेकिन मैं घर न जाऊँगी। भवानी के चरणोंमें देह विसर्जन करने आई हूँ—निश्चय ही करूँगी। स्वामिन् ! तुम घर लौट जाओ। मरूँगी—मेरे लिये रोना नहीं।"

"नहीं—मृण्मयी ! नहीं !"—यह कहकर दोनों हाथ पसारकर नवकुमार कपालकुंडलाको हृदयसे लगा लेनेके लिये आगे बढ़े—लेकिन कपालकुंडलाको वह पा न सके। चैत्र-वायुसे एक जल तरङ्ग ने उस ढूहेसे टक्कर ली और वह ढूहा कपालकुंडलाके साथ बड़े ही शब्दसे नदी जलमें जा गिरा।

नवकुमारने भीषण शब्द सुना—कपालकुंडलाको अन्तर्हित होते देखा। तुरत वे भी एक छलाँगमें जलमें जा रहे। नवकुमार तैरना अच्छा जानते थे। बहुत देर तक तैरते-डुबकी लगाते, कपालकुंडला को खोजते रहे। उन्होंने कपालकुंडलाको न पाया—स्वयं भी जलसे न निकले।

उस अनन्त गंगाप्रवाहमें वसन्त वायुविक्षुब्ध वीचियोंमें आन्दोलित होते हुए कपालकुंडला और नवकुमार कहाँ गये ?

॥ समाप्त ॥

क०मुद्रक–विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि०, मानमन्दिर, वाराणसी–१